दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

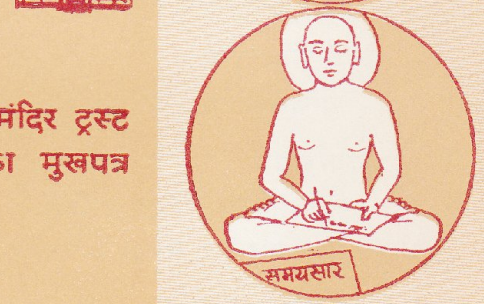

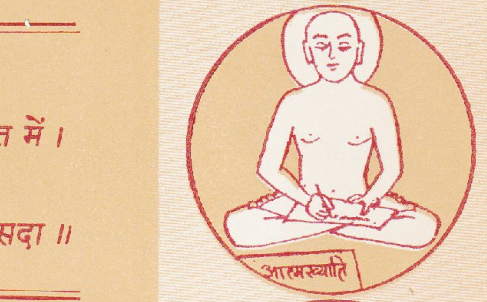

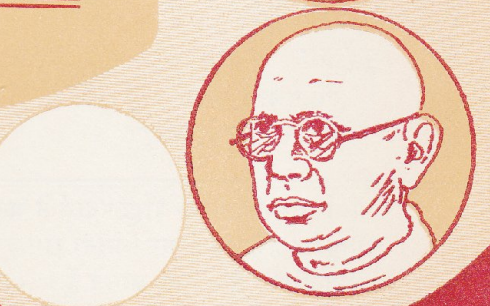

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (गुजरात) का मुखपत्र

मान महा विष रूप,
करहिं नीच गति जगत में।
कोमल सुधा अनूप,
सुख पावे प्राणी सदा॥

सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

आत्मधर्म [३७८]

[शाश्वत सुख का मार्गदर्शक आध्यात्मिक हिन्दी मासिक]

संपादक :
डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल

प्रबंध संपादक :
अखिल बंसल

कार्यालय :
श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)

शुल्क :
आजीवन : १०१ रुपये
वार्षिक : ६ रुपये
एक प्रति : ५० पैसे

मुद्रक :
सोहनलाल जैन
जयपुर प्रिण्टर्स, जयपुर

क्या

१ महिमा अगम जिनागम की
२ स्वयं से ही संतुष्ट हो....
३ संपादकीय : उत्तम मार्दव
४ समयसार प्रवचन
५ परमात्मप्रकाश प्रवचन
६ द्रव्यसंग्रह प्रवचन
७ नयों के कथन का मूल प्रयोजन
८ ज्ञान-गोष्ठी
९ समाचार दर्शन
१० पाठकों के पत्र
११ प्रबंध संपादक की कलम से

"धर्मी जीव किसी भी बाह्य पदार्थ से अपना बड़प्पन नहीं मानते, किंतु स्वभाव के सम्यक्श्रद्धा-ज्ञानपूर्वक अभेदत्व होकर जितना राग दूर हो गया, उतना बड़प्पन है और जितना राग शेष रहा, उतनी हीनता है - ऐसा जानते हैं। बाह्य पदार्थों से अपने को बड़ा मानना, सो मद है और मेरी जाति हलकी, मेरा कुल नीचा, इत्यादि प्रकार बाह्य पदार्थों से अपने को हीन मानना, वह भी मद है, क्योंकि उसने जाति-कुल में अहंपना किया है।"

— पूज्य कानजीस्वामी

आत्मधर्म

शाश्वत सुख का, आत्म शान्ति का, प्रगट करे जो मर्म।
समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥

वर्ष : ३२ [३७८] अंक : ६

महिमा है अगम जिनागम की।।महिमा०॥

जाहिं सुनत जड़ भिन्न पिछानी,
हम चिन्मूरति आतम की।।महिमा०॥

रागादिक दुखकारन जाने,
त्याग बुद्धि दीनी भ्रम की।

ज्ञान ज्योति जागी घट अंतर,
रुचि वाढी पुनि शम-दम की।।महिमा०॥

कर्म बंध की भई निरजरा,
कारण परम्परा क्रम की।

'भागचंद' शिव लालच लागो,
पहुँच नहिं है जहाँ जम की।।महिमा०॥

स्वयं से ही संतुष्ट हो.....

जगत के जीवों ने जगत को संतुष्ट करने के लिये, उसे प्रसन्न रखने के लिये तो सब कुछ अनंत बार किया है; किंतु मैं (आत्मा) यथार्थरूप से कैसे संतुष्ट होऊँ और मेरे आत्मा को सचमुच क्या रुचता है, उसका कभी विचार तक नहीं किया, कभी दरकार तक नहीं की। जिसे सचमुच आत्मा को संतुष्ट करने की अभिलाषा जागृत हुई है, वह उसे अवश्य संतुष्ट करके ही रहेगा और उसे संतुष्ट होना अर्थात् आनंदधाम में पहुँचना ही होगा।

यहाँ जगत के जीवों को संतुष्ट करने की बात नहीं है; किंतु जो अपना हित चाहता हो, उसे क्या करना चाहिये, उसकी यह बात है। अपना स्वभाव ही ज्ञान और आनंद से भरपूर है, उसकी श्रद्धा करे तो उसमें से कल्याण प्रगट हो; इसके अतिरिक्त कहीं अन्यत्र से तीन काल-तीन लोक में भी कल्याण नहीं हो सकता।

जीवों को यह बात महंगी मालूम होती है। इसलिए उनकी ऐसी विपरीत धारणा हो गयी है कि कोई अन्य मार्ग अपनाने से धर्म हो जायेगा। किंतु भाई! तू अनंत काल तक बाह्य में देखता रहेगा, तब भी आत्मधर्म प्रगट नहीं होगा, इसलिए पराश्रय छोड़कर स्वतत्त्व की रुचि करना, प्रेम करना, मनन करना ही सत्स्वभाव को प्रगट करने का उपाय है।

इसलिये आचार्यदेव कहते हैं कि जो अपना हित चाहते हों, वे ऐसा करें। जिन्हें अपना हित करना हो, उन्हें यही करना होगा।

अज्ञानी जीवों की बाह्य दृष्टि होने से वे ऐसा मानते हैं कि मैं पर का आश्रय लूँ तो धर्म हो; किंतु ज्ञानी कहते हैं कि हे भाई! उन सबका आश्रय छोड़कर तू अंतर में अपनी आत्मा की श्रद्धा कर, आत्मा को प्रगट करने का आधार अंतर में है। आत्मा की पवित्रता और उसका आनंद आत्मा में से ही प्रगट होते हैं, बाह्य में से किसी काल प्रगट नहीं होते।

—पूज्य कानजीस्वामी

सम्पादकीय

उत्तम मार्दव | एक चिंतन

क्षमा के समान मार्दव भी आत्मा का स्वभाव है। मार्दवस्वभावी आत्मा के आश्रय से आत्मा में जो मान के अभावरूप शांति-स्वरूप पर्याय प्रकट होती है, उसे भी मार्दव कहते हैं। यद्यपि आत्मा मार्दवस्वभावी है, तथापि अनादि से आत्मा में मार्दव के अभावरूप मान पर्याय ही प्रकटरूप से विद्यमान है।

'मृदोर्भावः मार्दवम्' मृदुता-कोमलता का नाम मार्दव है। मान कषाय के कारण आत्मस्वभाव में विद्यमान कोमलता का अभाव हो जाता है। उसमें एक अकड़-सी उत्पन्न हो जाती है। मान कषाय के कारण मानी अपने को बड़ा और दूसरों को छोटा मानने लगता है। उसमें समुचित विनय का भी अभाव हो जाता है। मानी जीव हमेशा अपने को ऊँचा और दूसरों को नीचा करने का प्रयत्न किया करता है। मान के खातिर वह क्या नहीं करता? छल कपट करता है, मान भंग होने पर क्रोधित हो उठता है। सन्मान प्राप्ति के लिये सब कुछ करने को तैयार रहता है। यहाँ तक कि जिन धनादि पदार्थों का संग्रह मौत की कीमत पर करता है, उन्हें भी पानी की तरह बहाने को तैयार हो जाता है। घर-बार, स्त्री-पुत्रादि सब कुछ छोड़ देने पर भी मान नहीं छूटता। अच्छे-अच्छे तथाकथित महात्माओं को आसन की ऊँचाई के लिये झगड़ते देखा जा सकता है, नमस्कार न करने पर उखड़ते देखा जा सकता है। यह सब मान कषाय की ही विचित्र महिमा है।

मानी जीव की प्रवृत्ति का चित्रण महापंडित टोडरमलजी ने इसप्रकार किया है :—

''जब इसके मान कषाय उत्पन्न होती है, तब औरों को नीचा व अपने को ऊँचा दिखाने की इच्छा होती है और उसके अर्थ अनेक उपाय सोचता है। अन्य की निंदा करता है, अपनी प्रशंसा करता है व अनेक प्रकार से औरों की महिमा मिटाता है, अपनी महिमा करता है। महाकष्ट से जो धनादिक का संग्रह किया, उसे विवाहादि कार्यों में खर्च करता है तथा कर्ज

लेकर भी खर्चता है। मरने के बाद हमारा यश रहेगा, ऐसा विचारकर अपना मरण करके भी अपनी महिमा बढ़ाता है। यदि कोई अपना सम्मानादिक न करे तो उसे भयादिक दिखाकर दु:ख उत्पन्न करके अपना सम्मान कराता है। तथा मान होने पर कोई पूज्य-बड़े हों, उनका भी सम्मान नहीं करता, कुछ विचार नहीं रहता। यदि अन्य नीचा और स्वयं ऊँचा दिखाई न दे, तो अपने अन्तरंग में आप बहुत संतापवान होता है और अपने अंगों का घात करता है तथा विष आदि से मर जाता है। ऐसी अवस्था मान होने पर होती है।'' **(मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ ५३)**

कषायों में मान का दूसरा नंबर है। क्रोध का पहिला। दश धर्मों में भी उत्तमक्षमा के बाद ही उत्तममार्दव आता है। इसका भी कारण है। यद्यपि क्रोध और मान दोनों द्वेषरूप होते हैं, तथापि इनकी प्रकृति में भेद है। जब कोई हमें गाली देता है तो क्रोध आता है पर जब प्रशंसा करता है तो मान हो जाता है। दुनिया में तो निंदा और प्रशंसा सुनने को मिलती ही रहती है। अज्ञानी दोनों स्थितियों में कषाय करता है।

जिसप्रकार से जिनका शारीरिक स्वास्थ्य कमजोर होता है, उन्हें ठंडी और गर्म दोनों प्रकार की हवाएँ परेशान करती हैं, गर्म हवा में उन्हें लू लग जाती है और ठंडी हवा से जुखाम हो जाता है; उसीप्रकार जिनका आत्मिक स्वास्थ्य कमजोर होता है, उन्हें निंदा और प्रशंसा दोनों ही परेशान करते हैं। निंदा की गर्म हवा लगने से उन्हें क्रोध की लू लग जाती है और प्रशंसा की ठंडी हवा लगने से मान का जुखाम हो जाता है।

निंदा शत्रु करते हैं और प्रशंसा मित्र। अत: क्रोध के निमित्त बनते हैं शत्रु और मान के निमित्त बनते हैं मित्र।

विरोधियों की आदत होती है विद्यमान गुणों की चर्चा तक न करना और अविद्यमान अवगुणों की बढ़ा-चढ़ाकर चर्चा करना। अनुकूलों की भी आदत होती है, वे भी एक कमजोरी के शिकार होते हैं। वे विद्यमान अवगुणों की चर्चा तक नहीं करते, बल्कि अल्प गुणों को बढ़ा-चढ़ाकर बखान करते हैं, कभी-कभी अविद्यमान गुणों को भी कहने लगते हैं। कम्पाउंडर को डॉक्टर और मुंशी को वकील साहब कहना, इसी वृत्ति का परिणाम है।

दोनों ही वृत्तियाँ खोटी हैं, क्योंकि वे क्रमश: क्रोध और मान के अनुकूल हैं।

ऐसे लोग दुनिया में भले ही कम मिलें जो गुणों को अवगुण-रूप में प्रस्तुत करें, पर ऐसे चापलूस पग-पग पर मिलेंगे जो छोटे से गुण को बढ़ा-चढ़ाकर कहते हैं। लखपति को करोड़पति कहना साधारण-सी बात है।

एक बात यह भी है कि निंदा करनेवाले प्राय: पीठ-पीछे निंदा करते हैं, मुँह के सामने निंदा करनेवाले बहुत कम मिलेंगे; पर प्रशंसा अधिकतर मुँह पर ही की जाती है, पीठे-पीछे बहुत कम। वे लोग बड़े ही भाग्यशाली हैं जिनकी प्रशंसा लोग पीठ-पीछे भी करें।

अत: प्रशंसा निंदा से अधिक खतरनाक है।

प्रतिकूलता में क्रोध और अनुकूलता में मान आता है। असफलता क्रोध और सफलता मान की जननी है। यही कारण है कि असफल व्यक्ति क्रोधी होता है और सफल मानी। जब कोई व्यक्ति किसी काम में असफल हो जाता है तो वह उन स्थितियों पर क्रोधित हो उठता है, जिन्हें वह असफलता का कारण समझता है और सफल होने पर सफलता का श्रेय स्वयं लेकर अभिमान करने लगता है।

यद्यपि मान भी क्रोध के समान खतरनाक विकार है, पर लोग उसे न जाने क्यों कुछ प्यार करते हैं ? मानपत्र सबके घरों में टंगे मिल जावेंगे, किसी के घर पर क्रोधपत्र नहीं मिलेगा। क्रोधपत्र कोई किसी को देता भी नहीं है, और कोई देगा भी तो कोई लेगा नहीं, घर में लगाने की बात तो बहुत दूर है। पर लोग मानपत्र बड़ी शान से लेते हैं और उसे बड़े ही प्यार से घर में लगाते हैं। बहुत लोग तो उसे ज्ञान-पत्र समझते हैं, जबकि उस पर साफ-साफ लिखा रहता है मान-पत्र। इतने से भी संतोष नहीं होता है तो फिर उसे अखबारों में पूरा का पूरा छपाते हैं, चाहे उसका विज्ञापन चर्चा ही क्यों न देना पड़े।

यदि कभी मान-पत्र मिल जाता है तो उसे संभाल कर रखते हैं, पर अपमान तो अनेक बार मिला है पर.....। पुण्यहीनों का मान से अधिक अपमान ही होता है।

मान एक मीठा जहर है, जो मिलने पर अच्छा लगता है, पर है बहुत दुखदायक। दुखदायक क्या दुखरूप ही है क्योंकि है तो आखिर कषाय ही।

यद्यपि मान भी क्रोध के समान ही आत्मा का अहित करनेवाला विकार है, तथापि बाह्य

में क्रोध के समान सर्व-विनाशक नहीं। जिस पर हमें क्रोध आता है, हम उसे नष्ट कर डालना चाहते हैं, पूर्णतः बर्बाद कर देना चाहते हैं; पर जिसके लक्ष्य से मान होता है, उसे नष्ट नहीं करना चाहते वरन् उसे कायम रखना चाहते हैं, पर अपने से कुछ छोटे रूप में।

क्रोधी को विरोधी की सत्ता ही स्वीकृत नहीं होती, जबकि मानी को भीड़ चाहिये, नीचे बैठनेवाले चाहिये, जिनसे वह कुछ ऊँचा दिखे। मानी को तो मान की पुष्टि के लिये एक सभा चाहिये, जिसमें सब नीचे बैठे हों और वह सबसे कुछ ऊँचा। अतः मानी दूसरों को भी रखना चाहता है पर अपने से कुछ नीचे, क्योंकि मान की प्रकृति ऊँचा दिखने की है और ऊँचाई एक सापेक्ष स्थिति है। कोई नीचा हो तो ऊँचे का व्यवहार बनता है। ऊँचाई कें लिये नीचाई और नीचाई के लिये ऊँचाई चाहिये।

क्रोधी क्रोध के निमित्त को हटाना चाहता है, पर मानी मान के निमित्तों को रखना चाहता है। क्रोधी कहता है गोली से उड़ा दो, मार दो; पर मानी कहता है - नहीं; मारो मत, पर जरा दबाकर रखो।

जागीरदार लोग गाँव में किसी को पाँव में सोना नहीं पहिनने देते थे, उनके मकान से ऊँचा मकान नहीं बनाने देते थे, क्योंकि उनके मकान से दूसरे का मकान बड़ा हो जाये तो उनका मान खंडित हो जाता था।

क्रोधी वियोग चाहता है, पर मानी संयोग। यदि मुझे सभा में क्रोध आ जाये तो मैं उठकर भाग जाऊँगा और यदि वश चलेगा तो सबको भगा दूँगा। पर यदि मान आवे तो भागूँगा नहीं और सबको भगाऊँगा भी नहीं, पर नीचे बिठाऊँगा और मैं स्वयं ऊपर बैठना चाहूँगा। मान की प्रकृति भगाने की नहीं, दबाकर रखने की, नीचे रखने की है; जबकि क्रोध की प्रकृति खत्म करने की है।

यही कारण है कि क्रोध नंबर एक की कषाय है और मान नंबर दो की।

मान के अनेक रूप होते हैं। कुछ रूप तो ऐसे होते हैं, जिन्हें बहुत से लोग मान मानते ही नहीं। दीनता मान का एक ऐसा ही रूप है, जिसे लोग मान नहीं मानना चाहते। दीन को मानी-अभिमानी मानने को उनका दिल स्वीकार नहीं करता। वे कहते हैं दीन तो दीन है, वह मानी कैसे हो सकता है ?

यदि मार्दव धर्म के अभाव का नाम मान कषाय और मान कषाय के अभाव का नाम मार्दव धर्म है तो फिर दीनता को मान मानना ही होगा, क्योंकि उसे यदि मान न माना जायेगा तो मान के अभाव में दीनता मार्दव हो जावेगी।

क्यों ? कैसे ?

देखिये—मान आठ चीज़ों के आश्रय से होता है :-

ज्ञानं पूजां कुलं जातिं बलमृद्धिं तपो वपुः।
अष्टावाश्रित्य मानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मयाः॥

(रत्नकरण्ड श्रावकाचार, श्लोक २५)

ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, वृद्धि, तप और शरीर इन आठ वस्तुओं के आश्रय से जो मान किया जाता है, उसे मानरहित भगवान मान कहते हैं।

तात्पर्य यह है कि क्रोध या मान कोई भी विकार हवा में नहीं होता, किसी न किसी के आश्रय से होता है। आश्रय का अर्थ है लक्ष्य। अर्थात् जब हमें क्रोध आता है तो वह किसी न किसी पर, किसी न किसी के लक्ष्य से होता है। ऐसा नहीं कि क्रोध आने पर पूछा जाये कि किस पर आ रहा है तो कहे किसी पर नहीं, वैसे ही आ रहा है। ऐसा नहीं होता। क्रोध किसी न किसी पर ही आता है। उसीप्रकार मान भी किसी न किसी वस्तु के आश्रय से ही होता है। जिन वस्तुओं के आश्रय से मान होता है, उन्हें आठ भागों में वर्गीकृत किया गया है।

'मैं ज्ञानी हूँ' इस विकल्प के आश्रय से होनेवाले मान को ज्ञानमद कहते हैं। इसीप्रकार कुल, जाति, धन, बल आदि के आश्रय से कुलमद, जातिमद, धनमद, बलमद आदि होते हैं।

अधिकांश लोगों की मान्यता ऐसी पाई जाती है कि धनमद, धनवालों को ही होता है, गरीबों को नहीं। उनका कहना है कि गरीबों के पास धन है ही नहीं, तो उन्हें धनमद कैसे हो सकता है ? इसीप्रकार रूपमद रूपवालों को होगा, कुरूपों को नहीं। बलमद, बलवानों को होगा, निर्बलों को नहीं। इसीप्रकार अन्य भी समझ लेना चाहिये।

उनकी यह बात ऊपर से कुछ जँचती भी है, पर गंभीरता से विचार करने पर प्रतीत होता है कि यह बात युक्तिसंगत नहीं है। क्योंकि यदि धनमद धनवालों को ही होगा, बलमद

बलवालों को ही होगा, रूपमद रूपवान को ही होगा तो फिर ज्ञानमद ज्ञानवान को ही होना चाहिये; जबकि ज्ञानमद ज्ञानी को नहीं, अज्ञानी को होता है। ज्ञानमद ही क्यों, आठों ही मद अज्ञानी को ही होते हैं, ज्ञानी को नहीं।

जब ज्ञानमद अज्ञानी को हो सकता है तो धनमद निर्धन को क्यों नहीं, रूपमद कुरूप को क्यों नहीं ? इसीप्रकार बलमद निर्बल को क्यों नहीं ? आदि।

दूसरी बात यह है कि मान लो एक व्यक्ति ऐसा है जिसके पास न तो धन है, न बल है, न ही वह रूपवान है, न ही ऐश्वर्यवान है, न ही ज्ञानी एवं तपस्वी ही है, उच्च जाति एवं उच्च कुलवाला भी नहीं है तो उसके तो कोई मद होगा ही नहीं, उसे किसी भी प्रकार का मान होगा नहीं। उसे तो फिर मान कषाय के अभाव में मार्दव धर्म का धनी मानना होगा। शायद यह आपको भी स्वीकार न होगा ? क्योंकि इस स्थिति में जो धर्म का नाम भी नहीं जानता ऐसे दीन-हीन, कुरूप, निर्बल, नीच जाति कुलवाले अज्ञानी जन के भी मार्दव धर्म की उपस्थिति माननी होगी, जो संभव नहीं है।

वस्तुत: स्थिति यह है कि धन के संयोग से अपने को बड़ा माने, वह मानी। मात्र धन के होने से कोई मानी नहीं हो जाता पर उसके होने से अपने को बड़ा मानकर मान करने से मानी होता है। इसी प्रकार धन के न होने से या कम होने से अपने को छोटा माने, वह दीन है, मात्र धन की कमी या अभाव से कोई दीन नहीं हो जाता - हो जावे तो मुनिराजों को दीन मानना होगा, क्योंकि उनके पास तो धन होता ही नहीं, वे रखते ही नहीं। वे तो मार्दव धर्म के धनी हैं, वे दीन कैसे हो सकते हैं, धन के अभाव से अपने को छोटा अनुभव कर दीनता लावे तो दीन होता है।

धनादि के अभाव में भी धनादिमदों की उपस्थिति मानने में परेशानी इसलिए होती है कि हम धनादि के संयोग से मान की उत्पत्ति मान लेते हैं। हम मान का नाप पर से करते हैं। मान कषाय और मार्दव धर्म दोनों ही आत्मा की पर्यायें हैं, अत: उनका नाप अपने से ही होना चाहिये, पर से नहीं।

दूध लीटर से नापा जाता है और कपड़ा मीटर से। यदि कोई कहे दो लीटर कपड़ा दे देना या दो मीटर दूध देना तो दुनिया उसे मूर्ख ही समझेगी क्योंकि ऐसा बोलनेवाला न तो लीटर

को ही समझता है और न मीटर को ही, या फिर वह दूध और कपड़ा दोनों से अपरिचित है अन्यथा लीटरों में कपड़ा और मीटरों में दूध क्यों माँगता ?

आत्मा के धर्म मार्दवादि और अधर्म मानादि को भी परपदार्थों से क्यों नापना ? धनादि परपदार्थों के संयोग मात्र से मान कषाय एवं उनके अभाव से मार्दव धर्म को माननेवाले न तो मान कषाय को ही समझते हैं और न मार्दव धर्म को ही। भले ही वे मान कषाय करते हों, पर उसका सही स्वरूप नहीं समझते। ऐसा भी संभव है कि धनादि का संयोग हो पर धनमद न हो। अज्ञानी को धनादि का संयोग न होने पर भी नियम से धनादिमद होते हैं, क्योंकि जब तक सम्यग्दर्शन नहीं हुआ, आत्मा का अनुभव नहीं हुआ, तब तक धनादिमदों की उपस्थिति अनिवार्य है, भले ही वह बाह्य में अभिमान करता दिखाई न भी दे।

मान और दीनता दोनों ही मार्दव धर्म के विरोधी भाव हैं। अत: दोनों ही मद (मान) के ही रूप हैं। जब मार्दव के अभाव को मान या मान के अभाव को मार्दव कहा जाता है – कम से कम तब निश्चित रूप से 'मान' शब्द में दीनता को भी शामिल मानना होगा, अन्यथा मार्दव धर्मवालों के दीनता का अभाव मानना संभव न होगा।

'ज्ञानी के ज्ञानमद नहीं होता और अज्ञानी के होता है।' इससे भी एक बात प्रकट होती है कि मान जिसका होता है, उसकी सत्ता हो ही, यह आवश्यक नहीं। अत: धनमद होने के लिये धन की उपस्थिति आवश्यक नहीं।

धनादि का व्यवहार तो मात्र मनुष्य गति में ही पाया जाता है और मान चारों ही गतियों में पाया जाता है। कुल-जाति का व्यवहार भी मनुष्य-व्यवहार है। मान को मात्र मनुष्य-व्यवहार तक सीमित रखकर नहीं, विस्तृत सीमा में समझना होगा।

इसमें कूल बात ध्यान देने की यह है कि अज्ञानी ने अपना नाप अपने से नहीं किया वरन् धनादि के संयोग से किया। धन के संयोग से अपने को बड़ा माना और उसकी कमी या अभाव से अपने को छोटा माना। पर के कारण चाहे अपने को छोटा माने या बड़ा – दोनों ही मान है। इस कारण मानी तो मानी है ही, दीन भी मानी ही है।

लौकिक दृष्टि से भले ही उनमें भेद हो पर आध्यात्मिक दृष्टि से विशेषकर मार्दव धर्म के

संदर्भ में अभिमान और दीनता दोनों मान के ही रूप हैं, उनमें कोई विशेष भेद नहीं। मार्दव धर्म दोनों के ही अभाव में उत्पन्न होनेवाली स्थिति है।

अभिमान और दीनता दोनों में अकड़ है; मार्दव धर्म की कोमलता, सहजता दोनों में ही नहीं है। मानी पीछे को झुकता है, दीन आगे को; सीधे दोनों ही नहीं रहते। मानी ऐसे चलता है जैसे वह चौड़ा हो और बाजार सकड़ा एवं दीन ऐसे चलता है जैसे वह भारी बोझ से दबा जा रहा हो।

अत: यह एक निश्चित तथ्य है कि अभिमान और दीनता दोनों ही विकार हैं, आत्म-शांति के भंग करनेवाले हैं और दोनों के अभाव का नाम ही मार्दव धर्म है।

समानता आने पर मान जाता है। मार्दव धर्म में समानता का तत्त्व विद्यमान है। 'सभी आत्माएँ समान हैं, कोई छोटा-बड़ा नहीं।' यह मान्यता सहज ही मान कषाय को कम करती है, क्योंकि बड़प्पन के भाव का नाम ही तो मान है। 'मैं बड़ा और जगत् छोटा' - यह भाव मानस्वरूप है। तथा 'मैं छोटा और जगत बड़ा' - यह भाव दीनतारूप है, यह भी मान का ही रूपांतर है जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है।

आर्हतमत में 'मेरा स्वरूप सिद्ध समान है' कहकर भगवान को भी समानता के सिद्धांत के भीतर ले लिया गया है। 'मैं किसी से बड़ा नहीं' माननेवाले को मान एवं 'मैं किसी से छोटा नहीं' माननेवाले को दीनता आना संभव नहीं।

छोटे-बड़े का भाव मान है और समानता का भाव मार्दव। सब समान हैं, फिर मान कैसा? पर हमने 'स' छोड़कार 'मान' रख लिया है। यदि मान हटाना है तो सबमें विद्यमान समानता को जानिये, मानिये, मान स्वयं भाग जायेगा और सहज ही मार्दव धर्म प्रकट होगा।

[उत्तरार्द्ध अगले अंक में]

सुंदर और असुंदर

परमपूज्य आचार्य कुंदकुंद के सर्वोत्तम ग्रंथराज समयसार की तीसरी गाथा पर हुए पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथा इसप्रकार है :-

एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुन्दरो लोए।
बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होदि॥

एकत्वनिश्चय को प्राप्त समय (आत्मा) लोक में सर्वत्र सुंदर है। अत: एकत्व में दूसरे के साथ बंध की कथा (बात) विसंवाद-विरोध करनेवाली है।

इस गाथा में अत्यंत गंभीर रहस्य भरे हुए हैं। एक-एक गाथा में मोक्ष के अमोघ मंत्र हैं। यह शास्त्र साक्षात् भगवान की वाणी में से आया है। दूसरी गाथा में समय का स्वरूप एवं उसका स्वसमय तथा परसमयरूप परिणमन बताया था। अब आचार्यदेव कहते हैं कि समय अर्थात् आत्मा स्वसन्मुख होकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्ररूप परिणमन करे, तब वह स्वसमयरूप एकत्व निश्चयगत होने से सुंदर है, और कर्म के साथ एकरूप होकर मोह-राग-द्वेषरूप परिणमन करे, तब परसमय होने से असुंदर है।

शुद्ध चैतन्यघन भगवान आत्मा के सम्मुख होकर, शुद्धरूप परिणमित आत्मा ही सर्व लोक में सुंदर है। त्रैकालिक शुद्ध आत्मा का लक्ष्य छोड़कर कर्म के निमित्त से होनेवाले पुण्य-पाप भाव के साथ एकरूप होकर परिणमन करना, विसंवाद-दु:ख उत्पन्न करनेवाला है, असुंदरता है। अत: आचार्यदेव आत्मा के साथ एकरूप परिणमन करने की प्रेरणा देते हैं।

आचार्य भगवान प्रथम 'समय' शब्द की व्याख्या करते हैं। फिर स्वसमय और परसमयरूप पर्याय की व्याख्या करेंगे।

इस विश्व के समस्त पदार्थों को समय कहा जाता है, क्योंकि अपने गुण-पर्यायों को प्राप्त होकर जो परिणमन करते हैं, वे समय हैं। प्रत्येक पदार्थ अपने गुण और पर्यायों को प्राप्त

होकर नित्य ध्रुव होते रहने से समय है। आत्मा अपने ज्ञानदर्शनसुख आदि गुण-पर्यायों को एकीभाव से प्राप्त होने से समय है। भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन आनंद का सागर है। उसके सम्मुख होकर अभेद रत्नत्रयरूप परिणमन करना, वह स्वसमय है। लोक में सभी पदार्थ अपने-अपने एकत्व निश्चय स्वरूप को प्राप्त होने से ही सुंदर है, अतः त्रिकाली आत्मवस्तु तो तीनों काल सुंदर ही है। निगोद में हो या नरक में, भगवान आत्मा तो शक्तिरूप से सदा सुंदर ही है। ऐसे शुद्ध स्वभाव में एकत्वरूप परिणमे, उसके अस्तित्व की श्रद्धा-ज्ञान करके अनुभवपूर्वक स्वसमयरूप परिणमन करना, वह भी सुंदर और सत्यार्थ है। वस्तु और उसकी पर्याय दोनों सुंदर हैं। पुण्य-पाप भावों के साथ एकरूप होकर परिणमन करना परसमय है। यह पर्याय में द्विविधपना हुआ, क्योंकि एक में दोपना होना विरोध है, असत्यार्थ है, बाधक है, विसंवाद-दुःख उत्पन्न करनेवाला होने से असुंदर है।

श्री जयसेनाचार्य ने इस गाथा की टीका करते हुए एकत्व निश्चय के तीन अर्थ किये हैं:-

(१) एकेन्द्रियादि अवस्थाओं में त्रैकालिक आत्मा शुद्ध निश्चयनय से सुंदर है। जिसने अपने शुद्ध स्वभाव के सम्मुख होकर रत्नत्रयरूप परिणमन किया, उसे सब आत्माएँ द्रव्य अपेक्षा सुंदर हैं, ऐसी सच्ची प्रतीति हुई।

एकेन्द्रियादि को मेरा आत्मद्रव्य सुंदर है, ऐसा विदित नहीं है परंतु जिसकी पर्यायदृष्टि चली गई है और द्रव्यदृष्टि प्रगट हुई है, उसे सुंदरता का सच्चा ज्ञान होता है।

(२) शुद्ध चैतन्यस्वरूपी भगवान आत्मा में ज्ञान-दर्शन-सुख आदि अनन्त गुणों का आंशिक शुद्ध परिणमन होना एकत्व निश्चयगत होने से सुंदर है।

(३) ज्ञान-आनंदस्वभावी आत्मा का आश्रय करके अभेद रत्नत्रयरूप परिणमन होना एकत्व निश्चयगत होने से सुंदर है।

यहाँ पर स्वसमय और परसमय ऐसे भेद द्रव्य अपेक्षा से नहीं कहे, परंतु समय की (आत्मा की) पर्याय अपेक्षा कहे गये हैं। ध्रुवशुद्धात्म-द्रव्यसामान्य तो त्रैकालिक समय है। धर्मास्ति आदि चार द्रव्य त्रिकाल शुद्ध हैं तो तू आत्मा शुद्ध क्यों नहीं? इसमें शुद्धकारणपर्याय की ध्वनि है।

ध्रुव के साथ एकत्व सुंदर है, ध्येय तो ध्रुव है। ध्येय को छोड़कर परवश होकर परिणमना सुंदर का विरोध है। यहाँ परिणामी आत्मा की बात है। जहाँ द्रव्य को ध्येय कहना हो, वहाँ पर्याय परद्रव्य है, आश्रय करनेयोग्य नहीं, सम्यक्त्व का विषय नहीं। सम्यक्त्व का विषय एकमात्र ध्रुव है।

पर्याय में से नयी पर्याय नहीं आती, अतः वह परद्रव्य है। द्रव्य में से नयी पर्याय आने से वह स्वद्रव्य है। द्रव्यदृष्टिवंत को ही सभी द्रव्यों की सुंदरता भासित होती है। वहाँ 'पर' का स्पर्श नहीं करता, अतः अपने धर्मी का स्पर्श करता है, ऐसा कहना है।

पुद्गलकर्म के वश होकर मोह-राग-द्वेष अथवा दया दानादि के शुभभावरूप परिणमन करना, आत्मा नहीं, अनात्मा है। और यही परसमयता आत्मा में द्विविधता उत्पन्न करती है, जो असत्य एवं दुखदायक होने से छोड़ने योग्य है।

समयसार गाथा ७१ में भी त्रैकालिक ध्रुव चैतन्यस्वभाव आत्मा के आश्रय से होनेवाले शुद्ध परिणमन को आत्मा एवं रागादि भाव जीव के शुद्ध कार्य न होने से उन्हें अनात्मा कहा गया है। यही बात इस गाथा में कहते हैं कि समय नाम के आत्मपदार्थ की परिणति दो प्रकार की है। ज्ञानानंदस्वभावी भगवान आत्मा के आश्रय से प्रगट होनेवाली निर्मल परिणति स्वसमय है और पराश्रय से प्रकट होनेवाली मलिन परिणति परसमय है, अनात्मा है। स्वभाव से त्रिकाल एकत्व निश्चय को प्राप्त आत्मपदार्थ में ऐसा दो प्रकार का परिणमन बाधा उत्पन्न करनेवाला विकार होने से छोड़नेयोग्य है और एकरूप परिणमन करनेयोग्य है।

यह त्रिकाल एकत्व निश्चयस्वभाव स्वयं जाने बिना ज्ञात नहीं होता। जैसे घी की महिमा सुनने और घी खानेवालों को देखनेमात्र से घी का स्वाद नहीं आता; उसीप्रकार अतीन्द्रिय आनंदस्वरूप आत्मा की महिमा सुनने मात्र से नहीं आती तथा स्वरूप को जानकर जीवों को देखनेमात्र से अनुभव नहीं होता, परंतु जानकर स्वरूपलीनता से स्वयं अनुभव करे, तब अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप ध्रुव में एकत्वरूप स्वसमयपना प्रगट होता है। आत्मा के सत्स्वरूप का खूब श्रवण करने के बाद उसके गूढ़ भावों का अंत में मिलान करके वस्तु का स्वयं निर्णय करके अनुभव करना चाहिये। उसके लिये विशेष निवृत्ति लेना चाहिये। बारंबार स्वाध्याय, चर्चा करना चाहिये, उसमें अरुचि भाव नहीं होना चाहिये।

वीतराग-सर्वज्ञ परमात्मा द्वारा देखे गये षट्-द्रव्य स्वरूप लोक में सब जगह जितने भी पदार्थ हैं, वे सब अपने गुण-पर्यायों को एकीभाव को प्राप्त होने से सुंदरता को प्राप्त हैं। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और कालद्रव्य भी अपने गुण-पर्यायों में रहने से सुंदर हैं। उनकी पर्याय में कभी पर का आश्रय नहीं होता। वे सब तीनों काल अपने एकत्व को प्राप्त होने से सुंदर हैं। छह द्रव्यों में मात्र जीवद्रव्य को ही बंधभाव से दुःख उत्पन्न होता है। पुद्गल में विकार भाव होने पर भी उसमें सुख-शक्ति न होने से उसमें सुख-दुःख उत्पन्न नहीं होते। जीव स्वतंत्र तथा विकार और निर्विकाररूप अपनी योग्यतानुसार परिणमन करता है। विकाररूप परिणमन करने पर दुःख उत्पन्न होता है और स्व में एकत्वरूप निर्विकारी परिणमन करने से सुख उत्पन्न होता है, इसलिये वह सुंदर है। अन्यप्रकार से परिणमन करने पर संकर, व्यतिकर, अधिकरण, परस्पराश्रय, अनवस्था, अप्रतिपत्ति, विरोध, अभाव आदि समस्त दोष आ जाते हैं।

संकर दोष - सर्वेषां युगपत्प्राप्तिः संकरः। अनेक द्रव्यों के एकरूपता की प्राप्ति संकर दोष है। जीव अनादि से अज्ञानदशा में शरीर को, शरीर की क्रिया को, द्रव्येन्द्रियों को, भावेन्द्रियों को तथा उनके विषय को स्व से एकरूप मानता है, यह संकर दोष है।

व्यतिकर दोष - परस्परविषयगमनं व्यतिकरः। यदि चेतनद्रव्य पर का कुछ कार्य करे और अचेतन कर्म या शरीर चेतन जीव का कुछ भला-बुरा करे तो चेतन अचेतनरूप हो जायें और अचेतन चेतनरूप हो जायें। यदि जीव दूसरे जीव का कुछ भला-बुरा करे तो एक जीव दूसरे जीवरूप हो जाये तो व्यतिकर दोष आ जायेगा।

जगत् में छह द्रव्य अत्यंत निकट एकक्षेत्रावगाह रूप में रहते हुए भी प्रत्येक द्रव्य, चाहे परमाणु हो या कालाणु, अपने में अंतर्मग्न रहनेवाले अपने अनंत धर्मों के समूह को चूमते हैं, स्पर्श करते हैं; तथापि परस्पर यदि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श करे तो वह परद्रव्यरूप हो जाये।

प्रवचनसार गाथा १७२ की टीका में अलिंगग्रहण के १८वें बोल में कहा है कि त्रैकालिक द्रव्य गुणभेद को स्पर्श नहीं करता परंतु यहाँ पर से पृथक्त्व सिद्ध करने के लिये कहते हैं कि प्रत्येक द्रव्य अपने धर्मों को स्पर्श करता है, चूमता है, परद्रव्य के गुण-पर्यायों को स्पर्श नहीं करता। प्रवचनसार में दृष्टि के विषयभूत सत्चिदानंद भगवान अभेद आत्मा को

सिद्ध करने के लिये कहा कि वह गुण-भेद को आलिंगन नहीं करता। वहाँ एक आत्मद्रव्य में अंतरंग में ही भेदज्ञान करने की बात कही है और यहाँ परद्रव्य से भेदज्ञान करने की बात है।

कर्म का उदय और शरीर आदि आत्मा को स्पर्श नहीं करते और आत्मा भी उन्हें स्पर्श नहीं करता। स्कंध में रहनेवाले अनंत परमाणुओं में से एक परमाणु दूसरे परमाणु को स्पर्श नहीं करता। सर्वव्यापक आकाश में जितने गुण हैं, उतने ही गुण एकप्रदेशी परमाणु में भी हैं, तथापि वे परस्पर एक-दूसरे को स्पर्श नहीं करते। तो फिर कर्म जीव को हैरान करते हैं, यह बात असत्य सिद्ध होती है। आचार्यदेव कलश नं. २०० में कहते हैं :-

नास्ति सर्वोऽपि संबंधः परद्रव्यात्मतत्त्वयोः।
कर्तृकर्मत्व संबंधाभावे तत्कर्तृता कुतः॥

परद्रव्य और आत्मद्रव्य को सर्व ही (अर्थात् कुछ भी) संबंध नहीं है। इसप्रकार कर्ता-कर्म संबंध का अभवा होने से आत्मा को परद्रव्य का कर्तृत्व कहाँ हो सकता है? नहीं हो सकता।

सभी द्रव्य अपने-अपने द्रव्य-गुण-पर्याय अपेक्षित धर्म और विकार को ही चूमते हैं, अतः वे सदा काल अपने स्वरूप से च्युत नहीं होने से पररूप परिणमन नहीं करते। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप परिणमन न करने से पदार्थों की अनंत शक्ति में से किसी भी शक्ति का नाश नहीं होता अर्थात् उन समस्त द्रव्यों में से किसी एक भी द्रव्य का नाश नहीं होता। समस्त द्रव्यों की जितनी-जितनी संख्या है, उतनी-उतनी संख्या निरंतर बनी रहती है। आकाश के एक क्षेत्र में रहने पर भी आत्मा आकाश को स्पर्श नहीं करता और आकाश भी अपने स्वरूप से च्युत होकर आत्मा में नहीं मिल जाता। एक जीवद्रव्य दूसरे जीवरूप नहीं होने से अनंत जीवद्रव्यों की जितनी संख्या है, उतनी बनी रहती है।

अनंत जीव आकाश के एक क्षेत्र में रहने पर भी वे सब अपने-अपने स्वक्षेत्र में रह रहे हैं। इसप्रकार सभी द्रव्य आकाश के एक क्षेत्र में रहने पर भी एक-दूसरे को स्पर्श नहीं करते और सर्व द्रव्य अपने स्वरूप से च्युत नहीं होते।

जब जीवद्रव्य अपने स्वरूप से च्युत नहीं होता, तब शरीर-मन-वाणी आदि परवस्तुएँ

जीव का क्या बिगाड़-सुधार कर सकती हैं ? अर्थात् अन्य द्रव्य जीव का किंचित् मात्र भी भला-बुरा नहीं कर सकते।

प्रवचनसार गाथा १४५ की टीका में तीर्थंकरों को पुण्य का विपाक अकिंचित्कर बतलाते हुए कहा है कि परपदार्थ जीव का किंचित्मात्र भी नहीं कर सकते, अतः परपदार्थ जीव को मोह-राग-द्वेषभाव उत्पन्न करा दें, ऐसा नहीं बन सकता। जीव स्वयं अपने दोष के कारण मोह-राग-द्वेषभाव उत्पन्न करता है। अतः समस्त द्रव्य टंकोत्कीर्ण की भाँति शाश्वत रहते हैं।

प्रत्येक द्रव्य में नवीन पर्याय उत्पन्न होना और पूर्व पर्याय व्यय होना विरुद्ध कार्य है, अतः उत्पाद-व्यय के स्वरूप को ध्रुव की अपेक्षा विरुद्ध कार्य कहा जाता है। उत्पाद-व्यय को भाव-अभाव भी कहते हैं। भाव, उत्पाद और अभाव, व्यय है। ध्रुवद्रव्य व गुण का गुणरूप स्थिर रहना अविरुद्ध कार्य है। विश्व के समस्त पदार्थ अपने उत्पाद-व्ययरूप विरुद्ध कार्य और गुणरूप अविरुद्ध कार्य से जैसे हैं, वैसे अनादि से टिक रहे हैं। पर्याय में उत्पाद-व्ययरूप विरुद्ध कार्य हो या गुण में गुणरूप अविरुद्ध कार्य हो, वस्तु तो जैसी है, वैसी टिक रही है। 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्' ध्रुव होने से वह ऐसा का ऐसा टिक रहा है, एक सत् दूसरे सत् में नहीं मिल जाता।

इसप्रकार सर्वपदार्थों का परस्पर भिन्नत्व सिद्ध करने के पश्चात् समय नाम के पदार्थ को बंधभाव से आनेवाली आपत्ति प्रस्तुत करते हैं :-

शुद्ध चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा का संबंध न करके कर्मनिमित्त से उत्पन्न होनेवाले मोह-राग-द्वेषादि भावबंध का संबंध करना विसंवादपना है, असत्यपना है, और वह दुःख उत्पन्न करता है। चैतन्यस्वरूप आत्मा के सम्मुख न होकर परसम्मुख होना पुद्गलकर्म में स्थित कहा जाता है जो परसमयपना का मूल अर्थात् कारण है।

त्रैकालिक ज्ञान-आनंदस्वभावी भगवान आत्मा 'समय' है। उसका आश्रय करके शुद्धरूप परिणमन करना 'स्वसमय' है और विकार का संबंध करके अशुद्धरूप परिणमन करना 'परसमय' है। इसप्रकार 'समय' नामक आत्मपदार्थ में दो भेद होना, वह द्विविधपना होने से विसंवाद की आपत्ति आती है। अतः 'समय' का एकत्व ही सुंदर और लाभदायक सिद्ध होता है। [क्रमशः]

परमार्थ जीव

पूज्य गुरुदेव कानजीस्वामी के अध्यात्म-रस से ओत-प्रोत प्रवचन आजकल परमपूज्य मुनिराज योगीन्दुदेव के ग्रंथराज 'परमात्मप्रकाश' पर चल रहे हैं।

जीवन-मरण और बंध-मोक्ष से भी रहित आत्मस्वरूप का प्रतिपादन करनेवाले प्रथम अध्याय के दोहा नं० ६८ पर हुए अत्यंत मार्मिक प्रवचनों का सार आत्मधर्म के जिज्ञासु पाठकों के लिये यहाँ दिया जा रहा है। मूल दोहा इसप्रकार है:-

ण वि उप्पज्जइ ण वि मरइ बंधु ण मोक्खु करेइ।
जिउ परमत्थे जोइया जिणवरु एउँ भणेइ॥६८॥

जिनेन्द्रदेव ऐसा कहते हैं कि हे योगीश्वर! परमार्थ से यह जीव न तो उत्पन्न होता है, न मरता है, और न बंध-मोक्ष को करता है। (गतांक से आगे)

शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से देखने पर अर्थात् शुद्ध द्रव्य जिसका प्रयोजन है, उस दृष्टि से देखने पर द्रव्य, बंध तथा मोक्ष का कर्ता नहीं है - ऐसा सुनकर शिष्य पूछता है कि प्रभो! आत्मा शुद्धनय से मोक्ष का कर्ता नहीं है, उसका अर्थ यह है शुद्धनय से मोक्ष भी नहीं है; इसलिये मोक्ष का प्रयत्न भी वृथा है। तब गुरु उसे समझाते हैं :-

वस्तु अबंधस्वरूप है, उसे दृष्टि में लेना, वह महान पुरुषार्थ है। निर्विकल्प शुद्ध परिणति द्वारा वस्तु दृष्टि में आती है। पर्याय में बंध-मोक्ष है परंतु द्रव्य में बंध-मोक्ष है ही नहीं। पर्याय में बंधभाव है और उसके अभाव से मोक्ष होता है, परंतु बंध त्रिकालीवस्तु में है ही नहीं। वस्तुस्वभाव में बंध कैसे होगा? वस्तु में बंध हो तो वस्तु का अभाव हो जाये। शुद्ध निश्चयनय से वस्तु में बंध नहीं है, इसलिये बंध के अभाव से होनेवाला मोक्ष भी वस्तु में नहीं है। ऐसी वस्तु की दृष्टि करना, वह महापुरुषार्थ है। ज्ञायकभाव में बंध-मोक्ष कहाँ से आये? पर्याय का बंध-मोक्ष वस्तु में नहीं है। निर्मल परिणति भी द्रव्य की नहीं है। आचार्यदेव द्रव्य का स्वरूप बतलाने, उसकी दृष्टि कराने तथा पर्यायदृष्टि छुड़ाने के लिये कहते हैं कि पर्याय को द्रव्य करता ही नहीं।

जो पुरुष बँधा हुआ था, वह छूट गया कहो, तब तो ठीक है, किंतु जो पुरुष बँधा ही न हो उसे छूट गया कहोगे तो वह पुरुष क्रोध करेगा। उसीप्रकार राग से जो बँधा था, उसे मुक्त हुआ कहना बराबर है, परंतु जो राग से बँधा हुआ है ही नहीं, उसे मुक्त हुआ कहना योग्य नहीं है। त्रिकाली वस्तुस्वभाव में बंधन है ही नहीं – जीववस्तु को राग का बंधन हो तो वस्तु ही नहीं रहती।

अनंत जिनवर ऐसा कहते हैं कि – जीव बंध-मोक्ष नहीं करता, उस जीव को हम जीव कहते हैं। अन्य प्रकार से कहें तो बंध-पर्याय तो आश्रय करने योग्य नहीं है, परंतु निश्चय मोक्षमार्ग भी आश्रय करने योग्य नहीं है। बंध-मोक्ष से रहित वस्तु आश्रय करने योग्य है। मोक्षमार्ग की पर्याय, वह व्यवहारजीव है। पर्याय, वह व्यवहार होने से पर्यायवाला जीव वह व्यवहारजीव है और द्रव्य, वह निश्चयजीव है।

परमात्मा होने की कला सिखाते हुए जिनवरदेव कहते हैं कि – हे आतमराम! जो जीव मोक्ष-परिणाम को भी नहीं करता, उसे हम जीव कहते हैं, वहाँ दृष्टि कर।

जीव और मोक्ष के बीच कोई संबंध है या नहीं? – हाँ, अभाव-संबंध है। द्रव्य और पर्याय को प्रागभावादि चार प्रकार के अभाव की जाति का अभाव नहीं है, परंतु द्रव्य और पर्याय के बीच आध्यात्मिक अभाव है। जीव में पर्याय नहीं है और पर्याय में जीव नहीं है – ऐसा संबंध है। भगवान त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप सदृश वस्तु है, सामान्यस्वरूप है, उसमें विशेष का अभाव है। सामान्य में विशेष का अभाव होने से सामान्य, वह विशेष को नहीं करता। व्यक्त में व्यक्त और अव्यक्त का एक साथ ज्ञान होने पर भी अव्यक्त व्यक्त को स्पर्श नहीं करता। पर्याय के आलिंगनरहित द्रव्य शुद्ध है। निर्मल पर्यायरहित द्रव्य को शुद्ध कहते हैं।

मोक्ष तथा मोक्षमार्ग आश्रय करने योग्य नहीं है; पर्यायरहित वस्तु आश्रय करने योग्य है। वस्तु ध्रुव है, उसमें बंध-मोक्ष की पर्याय नहीं है, उसे जिनवरदेव परमार्थ आत्मा कहते हैं। बंध-मोक्ष वह परमार्थ आत्मा नहीं है। बंध-मोक्ष तो पर्याय में है। द्रव्य में पर्याय नहीं है और पर्याय में द्रव्य नहीं है। ज्ञान की पर्याय में और श्रद्धा की पर्याय में द्रव्य का ज्ञान तथा उसकी प्रतीति आती है, परंतु द्रव्य नहीं आता।

प्रभु! एक बार सुन तो सही! तेरे द्रव्य की प्रभुता इतनी महान है कि उसमें बंध-मोक्ष

की पर्याय भी नहीं है। निश्चयमोक्षमार्ग की पर्याय में व्यवहारनय का विषय है क्योंकि वह पर्याय है; निश्चयमोक्षमार्ग की पर्याय निश्चयजीव को स्पर्श नहीं करती।

प्रवचनसार में ४६वें तथा ४७वें नय में कहा है कि मिट्टी को घटादि की अवस्था से देखना, वह अशुद्धनय है और मिट्टी को मिट्टीरूप देखना, सो शुद्धनय है। उसीप्रकार द्रव्य को बंध-मोक्ष से देखना, वह अशुद्धनय है और बंध-मोक्षरहित अकेले द्रव्य को देखना, सो शुद्धनय है। क्योंकि वस्तु में बंध-मोक्ष है ही नहीं और वही सम्यग्दर्शन का विषय है तथा वही भूतार्थ है।

निश्चयमोक्षमार्ग और मोक्ष भी व्यवहारनय का विषय है, केवलज्ञान भी पर्याय है, इसलिये व्यवहारनय का विषय है। जिनवरदेव ऐसा कहते हैं कि ध्रुव में बंध-मोक्ष की पर्याय का अभाव है। द्रव्य, सो निश्चय और पर्याय, सो व्यवहार अर्थात् अशुद्धनय है। निश्चयमोक्षमार्ग अशुद्ध नहीं है, परंतु निश्चयमोक्षमार्ग की पर्याय को देखना, वह भेद है; इसलिये वह अशुद्धनय है और बंध-मोक्ष से रहित त्रिकाली ध्रुव को देखना, वह शुद्धनय है।

मोक्षमार्ग की पर्याय व्यक्त है, वह अव्यक्त द्रव्य का स्पर्श नहीं करती, परंतु पर्याय द्रव्य का आश्रय लेती है न ? - पर्याय द्रव्य-सन्मुख हुई, इसलिये द्रव्य का आश्रय लिया—ऐसा कहा जाता है; किंतु जहाँ पर्याय को द्रव्य का स्पर्श भी नहीं है, वहाँ आश्रय किसप्रकार लेगी ? - द्रव्य के सन्मुख पर्याय हो, तब पर्याय ने द्रव्य का आश्रय लिया, ऐसा कहा जाता है।

शुद्धनिश्चयनय से द्रव्य में न तो बंध है और न ही मोक्ष है; परंतु अशुद्धनय से बंध और मोक्ष है, इसलिये मोक्ष का प्रयत्न करना चाहिये। बंध तथा मोक्ष की पर्याय व्यवहारनय का विषय है, इसलिये बंध की पर्याय का नाश करने के लिये मोक्ष का पुरुषार्थ किया जाता है।

तात्पर्य यह है कि पर्यायरहित भगवान आत्मा उपादेय है। सिद्ध समान अर्थात् त्रिकाली शुद्ध ऐसा निज आत्मा उपादेय है; परंतु किसे उपादेय है - कि जिसने अनुभूति द्वारा उपादेय बनाया है, तब उसे उपादेय हुआ है। शुद्धात्म-सन्मुखता की अनुभूतिरूप परिणमन हो, तब उसे आत्मा उपादेय हुआ है। ऐसे ही उपादेय-उपादेय करे, धारणा में रखे, उसे आत्मा उपादेय नहीं है।

द्रव्यसंग्रह प्रवचन

वृहद्द्रव्यसंग्रह पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सन् १९५२ में हुए थे। जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उन्हें यहाँ क्रमशः दिया जा रहा है।

[गतांक से आगे]

(२) अब उपयोग का वर्णन करते हैं :-

जीव उपयोगमय है। बारह प्रकार का उपयोग, वह भी जीव का स्वभाव है। उपयोग के बारह भेद हैं, वह भी स्वयं की पर्याय है। इसलिये उस भेद को भी यहाँ निश्चय में माना है। शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से तो परिपूर्ण और निर्मल ऐसा जो केवलज्ञानदर्शनरूप उपयोग है, उस उपयोगस्वरूप जीव है। देखिये, उपयोग की पर्याय अंतर में लक्ष्य कर अभेद हुई, वहाँ उसको द्रव्यार्थिकनय के विषय में लिया है; और अशुद्धनय से जीव क्षायोपशमिक ज्ञान-दर्शनवाला है। इसप्रकार दो नय से जीव को उपयोगमय कहा है।

निश्चय से शुद्ध चैतन्यप्राण से जीव अनादि-अनंत जीता है। शुद्ध दृष्टि से तो चैतन्यप्राण और भावप्राण से भिन्न नहीं, किंतु अभेद हैं। अशुद्धनय से आत्मा रागादि और इंद्रियोंरूप अशुद्धप्राण से जीता है। अर्थात् ज्ञानादि की पर्याय की हीनता है, वह भी स्वयं की पर्याय की योग्यता से ही है। इसप्रकार जानने योग्य है और त्रिकाली शुद्ध स्वभाव है, वह आदर करने योग्य है।

निश्चय से तो आत्मा केवलज्ञान और केवलदर्शन से अभेद शुद्ध उपयोगस्वरूप है। और अशुद्धनय से क्षायोपशमिक ज्ञान-दर्शनवाला है। पर्याय में ज्ञानादि की हीनता है, वह भी स्वयं की योग्यता से है। क्षायिक ज्ञान-दर्शन को तो द्रव्य में अभेद जानकर के द्रव्यार्थिकनय में लिया। समयसार में अभेद दृष्टि से तो गुण-गुणी के भेद का भी निषेध है। शुद्ध चैतन्यमूर्ति आत्मा त्रिकाल एकरूप है। वह ही स्वभावदृष्टि का अवलंबन है, उसे ही भूतार्थ कहा है और यहाँ केवलज्ञान पर्याय को द्रव्य के साथ अभेद जानकर द्रव्यार्थिकनय का विषय कहा है। केवलज्ञान पर्याय का भेद कर लक्ष्य में लेना, वह तो व्यवहार है और वह अभूतार्थ है। अभेद द्रव्य की दृष्टि कराने के लिये केवलज्ञान पर्याय के भेद को भी अभूतार्थ कहा। अभेद स्वभाव

को मुख्य कर उसे ही भूतार्थ कहा और वह ही द्रव्यदृष्टि का विषय है। यहाँ तो केवलज्ञान पर्याय को द्रव्य के साथ अभेद जानकर द्रव्यार्थिकनय का विषय कहा है। और जो मलिन अपूर्ण पर्याय है, वह अशुद्धनय का विषय है। थोड़ी ज्ञानदशा हो, वह भी स्वयं की पर्याय है किंतु वह असली स्वभाव नहीं, इसलिये उसको अशुद्धनय का विषय कहा। मतिज्ञान वगैरह पर्याय हैं, वे जीव की पर्याय हैं, वे कोई पर के कारण से नहीं।

मति-श्रुत-अवधि-मन:पर्ययज्ञान अथवा चक्षु-अचक्षु अवधिदर्शन ये सब उपयोग जीव के स्वयं के कारण से होते हैं, कर्म के कारण से या इंद्रिय के कारण से नहीं होते। अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा के प्रत्येक भेद भी जीव की स्वयं की पर्याय के कारण से हैं, पर के कारण से नहीं। श्रुतज्ञान के बीस बोल अथवा भेद (पर्यायज्ञान, पर्यायसमास आदि) आते हैं, वे भी जीव की स्वयं की पर्याय से रचे हुए हैं। इसप्रकार उपयोग के जितने प्रकार हैं, वे सब जीव के परिणाम हैं। अखंड ज्ञायक चैतन्यवस्तु की दृष्टि करते शुद्धि बढ़ती है, इसलिये वह दृष्टि कराने के लिये इसप्रकार कहा कि ज्ञानमार्गणा आदि भी पुद्गल के परिणाम हैं, किंतु मतिज्ञान आदि भेद जीव की स्वयं की पर्याय में हैं, ऐसा भी जानना चाहिये। यहाँ तो स्वतंत्रता का डंका बजा कर कहते हैं कि मतिज्ञान आदि उपयोग है, वह तेरी ही पर्याय है। दूसरे के लिये तेरा उपयोग नहीं। पर्याय स्वयं की है परंतु पर्याय के आश्रय से शुद्धता होती नहीं, अत: पर्याय को अभूतार्थ कहकर शुद्ध अभेद द्रव्य का आश्रय कराया है।

देखो, जीव स्वयं उपयोगमय है, ऐसा कहा। इसप्रकार जीव और उपयोग भिन्न-भिन्न नहीं। जीव को और ज्ञान को भिन्न मानते हैं, वे अन्यमति मिथ्यादृष्टि हैं; उसीप्रकार जैन संप्रदाय में रहकर भी जो कोई ऐसा माने कि मुझे ज्ञान परनिमित्त से होता है तो उसने भी जीव को उपयोगमय जाना नहीं, किंतु गुण-गुणी को भिन्न माना है। इसलिये वह भी मिथ्यादृष्टि है।

(३) अब अमूर्त का वर्णन करते हैं :-

जीव का स्वभाव तो चिदानंद अमूर्तिक है। व्यवहारनय से मूर्तकर्मों के आधीन होने से स्पर्श, रस, गंध, वर्णवाला मूर्तपदार्थ संयुक्त है; इसलिये मूर्त है। देखो, यह तो निमित्त का कथन है। मूर्तकर्म जड़ हैं, वे कोई जीव को जबरदस्ती पराधीन नहीं करते; पर जीव स्वयं,

स्वयं के स्वभाव को भूलकर जड़कर्मों के आधीन होता है, इसलिये मूर्त का संयोग है। उस संयोग-अपेक्षा से व्यवहार से जीव को मूर्त कहा जाता है।

कर्म मुझे हैरान करते हैं, ऐसी उल्टी मान्यता करके स्वयं मूर्तकर्मों के आधीन होता है, इस अपेक्षा से आत्मा को व्यवहार से मूर्त कहा है; पर कोई आत्मा अमूर्तिक मिटकर मूर्त हो सकता नहीं। यद्यपि जड़कर्म निमित्त है, वह मूर्त है, इसलिये उस निमित्त की अपेक्षा से जीव को व्यवहार से मूर्त कहा है; तथापि जीव स्वयं के यथार्थ स्वभाव से तो त्रिकाल अमूर्त है, इंद्रियों से जानने योग्य नहीं, पुद्गल इंद्रियों से तो अगोचर है, और खंड-खंड ज्ञानरूप भावेन्द्रियों से भी अगोचर है। जीव तो शुद्ध, बुद्ध, एकरूप, चिदानंद भगवान है; शुद्ध चैतन्यस्वभावी होने से अमूर्त है - ऐसा जीव आदरणीय है।

(४) अब कर्ता का वर्णन करते हैं :-

निश्चय से तो जीव देहादि की क्रिया से रहित, शुभाशुभ की क्रिया से भी रहित, निरुपाधि, टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकस्वभाव है; वह रागादि का या पर की क्रिया का कर्ता नहीं परंतु व्यवहारनय से मन-वचन-काय की क्रिया के कारणभूत ऐसे जड़कर्मों का तथा शुभाशुभ भावों का कर्ता है। जड़कर्मों का कर्ता तो उपचार से है। जड़कर्मों के बाँधने में जीव का विकारी भाव निमित्त है, इसलिये उपचार से जड़कर्मों को कर्ता कहा है।

वास्तव में तो कर्म स्वयं से भिन्न वस्तु है, इसलिये जीव उसका कर्ता है ही नहीं, किंतु निमित्त-नैमित्तिक अपेक्षा से उपचार से जीव को जड़कर्मों का कर्ता कहा है।

जीव विकार करे, तब कर्म बँधते हैं। कर्म बाँधने में जीव का विकार निमित्त है। इसप्रकार जो जीव निमित्त-नैमित्तिक संबंध को भी न जाने तो वह अज्ञानी है। राग-द्वेष भी स्वयं की पर्याय में होते हैं, वह पर्याय भी सत् है, वह कोई भ्रम नहीं है। जो उस पर्याय को नहीं जानते, वह मिथ्यादृष्टि है। राग पर्याय है, वह भी सत् है, वह कोई पर के कारण से नहीं। विकार तो त्रिकाल सत् नहीं, परंतु एक समयमात्र पर्याय का सत् है। द्रव्य-गुण, वे त्रिकाली सत् हैं और पर्याय, वह एक समयमात्र सत् है। इसप्रकार दोनों को जो ज्ञान जाने, उस ज्ञान का प्रवाह क्षणिक सत् से हटकर त्रिकाली सत् पर ढल जाता है। परंतु विकारी पर्याय या जो एक समय

मात्र की सत् है, उसको न माने तो ज्ञान ही मिथ्या है। वर्तमान और त्रिकाल दोनों को सत्रूप जानता हुआ ज्ञान त्रिकाली सत् की तरफ झुक जाता है अर्थात् वर्तमान के ज्ञान को त्रिकाल का आदर हो जाता है – इसका नाम धर्म है।

जीव स्वयं, स्वयं के विकार से कर्म को इष्ट बनाकर स्वयं शुभ–अशुभभाव का कर्ता होता है; कोई कर्म, क्षेत्र, काल को लेकर नहीं। जड़कर्म राग–द्वेष, उलझन कराये, ऐसा तीन काल में नहीं होता, क्योंकि कोई जीव संसार अवस्था में भी परमाणु को छूता नहीं है। जड़कर्म की पर्याय जीव का कुछ कर सकती नहीं, क्योंकि तीनों कालों में जीव और कर्म में परस्पर अत्यंत अभाव है।

नय साधक के होते हैं। कर्म बँधते हैं, उसमें विकारी भाव निमित्त है और नया कर्म नैमित्तिक है – वह जड़ के कारण से होता है। इसप्रकार व्यवहारनय का विषय जानना चाहिये। निमित्त–नैमित्तिक संबंध आदरणीय नहीं है। विकार अपने लक्ष्य से नहीं होता, किंतु परलक्ष्य से होता है और उस पराश्रय में निमितत कर्म है। इसप्रकार जानना वह व्यवहारनय है।

(५) अब स्वदेहपरिमाण का वर्णन करते हैं :–

निश्चय से प्रत्येक जीव स्वयं अरूपी असंख्यप्रदेशवाला है, असंख्यप्रदेशी अपने क्षेत्र में रहता है, वह दूसरे क्षेत्र में रहा नहीं, दूसरे क्षेत्र के आधार से नहीं। निश्चित लोकाकाश बराबर असंख्यप्रदेशीपना यह प्रत्येक जीव का त्रिकाली स्वरूप है। समुद्घात से लोकप्रमाण और संकोच से वर्तमान शरीरप्रमाण होना, वह व्यवहार है। वह मूल स्वरूप नहीं। जीव निगोद में हो, एकेन्द्रिय दशा में हो, वहाँ भी असंख्यप्रदेशी है। लोक के प्रदेशों की जितनी संख्या है, उतनी ही संख्या प्रत्येक जीव के प्रदेशों की तीनों काल रहती है। तो भी शरीर नामकर्म के निमित्त से स्वयं की योग्यता से शरीरप्रमाण से संकोच–विस्तारूप हो जाता है। चींटी में हो या हाथी में हो, उसके प्रदेश छोटे–बड़े हों या बड़े–घटें, ऐसा होता नहीं, लेकिन सिकुड़ जाते हैं या विस्तारूप हो जाते हैं।

जैसे दीपक है, वह छोटे–बड़े घड़े या मकान में रहे, वहाँ छोटे–बड़े आकार से उसका प्रकाश संकोच–विस्तारूप हो जाता है। उसीप्रकार अपने छोटे–बड़े शरीरप्रमाण से जीव स्वयं

के कारण से छोटा-बड़ा आकार धारण करता है। जैसे पानी छोटे-बड़े तबेले में या लोटे में हो, तब उसी के आकार का होता है, वह उसकी योग्यता से होता है। यदि वह बर्तन आकार का हो जाये तो फिर दूसरे आकार का हो नहीं सकता। वैसे जीव में भी उसकी स्वतंत्र योग्यता से शरीरप्रमाण से प्रदेशों में संकोच-विस्तार होता है, वह व्यवहार है।

इसप्रकार क्षणिक पर्याय की स्वतंत्र योग्यता जानकर, पर्यायबुद्धि छोड़कर त्रिकाली शुद्धद्रव्य पर दृष्टि करना, वही धर्म का कारण है। (क्रमशः)

अपने में खोज.....

आत्मा की शांति अपने स्वभाव में ही है, पर के साथ उसका कोई संबंध नहीं है। यदि ऐसा न हो और पर के साथ संबंध हो तो – पर के साथ का संबंध तोड़कर स्वभाव में एकता करके शांति का अनुभव नहीं हो सकता।

पर से विभक्त और स्वरूप में एकाकार होकर आत्मा अपने में ही अपनी शांति या वेदन कर सकता है। अपनी शांति के वेदन के लिये आत्मा को पर का संबंध नहीं करना पड़ता, क्योंकि अपनी शांति अपने में ही है। इसलिये हे जीव! बाह्य में शांति न खोज, तेरे अंतर में ही शांति है – उसका विश्वास करके अंतर्मुख हो तो अपने में ही तुझे अपनी शांति का वेदन होगा।

नयों के कथन का मूल प्रयोजन

सर्वश्रेष्ठ दिगंबराचार्य कुंदकुंद के प्रसिद्ध परमागम 'प्रवचनसार' नामक ग्रंथराज पर अमृतचंद्राचार्य ने 'तत्त्वप्रदीपिका' नामक गहन टीका संस्कृत भाषा में लिखी है। ग्रंथराज का मर्म स्पष्ट करने के लिये उक्त टीका के अंत में परिशिष्ट के रूप में ४७ नयों का वर्णन है, जो प्रत्येक आत्मार्थी को जाननेयोग्य है।

द्रव्यदृष्टि प्राप्त करने के अभिलाषी आत्मार्थियों को आत्मा की विविध योग्यतारूप अनंत धर्मों का ज्ञान अत्यंत आवश्यक है। पूज्य गुरुदेव कानजीस्वामी ने उक्त विषयों पर अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रवचन समय-समय पर दिये हैं। उन्हीं में से कुछ नयों का संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत है। [गतांक से आगे]

व्यवहारनय - आत्मद्रव्य व्यवहारनय से बंध और मोक्ष में द्वैत का अनुसरण करनेवाला है, बंधक (बंध करनेवाले) और मोचक (मुक्त करनेवाले) ऐसे अन्य परमाणु के साथ संयुक्त होनेवाले तथा उससे वियुक्त होनेवाले परमाणु की भाँति।

व्यवहारनय से आत्मा बंध और मोक्ष में (पुद्गल के साथ) द्वैत को प्राप्त होता है; जिसप्रकार परमाणु के बंध में वह परमाणु अन्य परमाणु के साथ संयोग पानेरूप द्वैत को प्राप्त होता है और परमाणु के मोक्ष में वह परमाणु अन्य परमाणु से पृथक् होनेरूप द्वैत को प्राप्त होता है, तदनुसार।

व्यवहारनय से आत्मा के बंध में कर्म के साथ संयोग की अपेक्षा आती होने से द्वैत है और आत्मा के मोक्ष में कर्म के वियोग की अपेक्षा आती होने से वहाँ भी द्वैत है।

कर्म के संयोग-वियोग के निमित्त की अपेक्षा से द्वैत का अनुसरण करने की योग्यतारूप एक धर्म आत्मा में है, उसकी यहाँ बात है। व्यवहारनय से देखने पर आत्मा में एक ऐसा धर्म है कि वह स्वयं कर्म का अनुसरण करता है। कर्म में ऐसी शक्ति नहीं है कि वह आत्मा को जबरन कर्म के अनुरूप अनुसरण कराये। बंध और मोक्ष दोनों में क्रमशः कर्म के सद्भाव की तथा कर्म के अभाव की अपेक्षा व्यवहार से आती है। अपनी पर्याय में बंध की योग्यता के समय आत्मा स्वयं कर्म के सद्भाव का अनुसरण करता है और अपनी पर्याय में मोक्ष की

योग्यता के समय वह कर्म के अभाव का अनुसरण करता है; इसलिये आत्मा द्वैत का अनुसरण करनेवाला है, ऐसी योग्यतारूप एक धर्म आत्मा में है।

कर्म का अनुसरण करने की योग्यतारूप धर्म जिस समय है, उसी समय स्वतंत्ररूप से बंध-मोक्ष में अद्वैत का अनुसरण करने का भी एक धर्म आत्मा में है। व्यवहारनय से द्वैत का और निश्चयनय से अद्वैत का अनुसरण करनेवाला है; परंतु ऐसे धर्मों को जानकर त्रिकाली अखंड अद्वैत चैतन्य का आश्रय करना, वह प्रयोजन की सिद्धि है।

जिसप्रकार परमाणु के बंध में वह परमाणु अन्य परमाणु के साथ संयोग पानेरूप द्वैत को प्राप्त करता है और परमाणु के मोक्ष में - पृथक् होने में अन्य परमाणु से पृथक् होनेरूप द्वैत को प्राप्त करता है; उसीप्रकार व्यवहारनय से आत्मा के बंध में कर्म के संयोगरूप द्वैत की अपेक्षा लागू होती है और आत्मा के मोक्ष में कर्म के वियोगरूप-अभावरूप द्वैत की अपेक्षा लागू होती है - ऐसा एक धर्म आत्मा का है। इस धर्म को ज्ञान में जानकर भी साधक जीव की दृष्टि का जोर तो निरंतर त्रिकाली ज्ञानानंद घनस्वरूप एक शुद्धात्मद्रव्यसामान्य पर ही होता है।

निश्चयनय - आत्मद्रव्य निश्चयनय से बंध और मोक्ष में अद्वैत का अनुसरण करनेवाला है, अकेला बँधता और छूटता ऐसा जो बंध-मोक्षोचित स्निग्धत्वरूक्षत्वगुणरूप परिणत परमाणु की भाँति।

निश्चयनय से आत्मा अकेला ही बद्ध और मुक्त होता है; जिसप्रकार बंध और मोक्ष को उचित ऐसे स्निग्धत्वगुणरूप या रूक्षत्वगुणरूप परिणमित परमाणु अकेला ही बद्ध और मुक्त होता है, तदनुसार।

आत्मा में एक ऐसा धर्म है कि कर्म के सद्भाव-अभाव की अपेक्षा बिना अपनी पर्याय में बंध की योग्यता के समय तथा मोक्ष की योग्यता के समय स्वतंत्ररूप से अद्वैत का अनुसरण करता है। आत्मा अकेला ही बंध या मोक्षरूप निश्चय से होता है - कर्म या अन्य किसी की अपेक्षा बिना ही; इसलिये आत्मा अद्वैत का अनुसरण करनेवाला है। जिसप्रकार एक परमाणु सूक्ष्मत्व में से स्थूलत्वरूप - स्कंधरूप परिणमित होता है, तथा वह परमाणु स्कंधपना छोड़कर पृथक् परमाणुरूप परिणमित होता है, वह अपनी स्वतंत्र योग्यता के कारण परिणमता है, अन्य परमाणु या स्कंध की अपेक्षा बिना परिणमता है; उसीप्रकार बंध में या मोक्ष में आत्मा अकेला ही तदनुसार परिणमित होता है। कर्म के सद्भाव-अभाव की अपेक्षा बिना ही अकेला परिणमित होता है अर्थात् अद्वैत का अनुसरण करता है, ऐसा आत्मा में एक धर्म है। प्रवचनसार

की १२६वीं गाथा में आचार्यदेव कहते हैं कि – अज्ञानदशा में या ज्ञानदशा में, संसार में या मोक्ष में, आत्मा स्वयं अकेला ही अपने परिणाम का कर्ता है।

देखो, यह नय का कथन चलता है। एक धर्म को देखकर-जानकर उसका अर्थात् भेद का अवलंबन नहीं होता है। आत्मप्रधान कथन में निश्चय से आत्मा अकेला बंध-मोक्ष का कर्ता है, इसलिये अद्वैत का अनुसरण करता है ऐसा आता है; परंतु उसे जानकर वहाँ अटकना नहीं है। परमार्थ दृष्टि से देखने पर वास्तव में तो परम पारिणामिकभाव, वह अद्वैत है; उसका अवलंबन लेने से बंध की पर्याय का व्यय और मोक्ष की पर्याय का उत्पाद होता है।

अध्यात्म-प्रधान कथन में निश्चय से क्षायिकादि चार भावों में कर्म के अभाव-सद्भाव का निमित्तपना होने से चारों भावों को कर्मकृत कहा है, इसलिये वह द्वैत है। व्यवहार से आत्मा क्षायिकादि द्वैत को अनुसरता है – कर्ता है; पारमार्थिक निश्चय से देखने पर एक अखंड निरवधि त्रिकाली परमपारिणामिकभाव ही अद्वैत है। नियमसार की ५०वीं गाथा में भी क्षायिकादि चारों भावों को पर-स्वभाव कहा है; पर-स्वभाव होने से परद्रव्य है और उससे हेय है – ऐसा कहा है। निश्चयनय तथा व्यवहारनय के अनेक प्रकार के कथन शास्त्रों में आते हैं; वहाँ नयसमूह तो इंद्रजाल है, यथार्थ रीति से न समझे तो मार्ग की प्राप्ति नहीं हो सकती।

समयसार की ११वीं गाथा में 'व्यवहारनय समस्त अभूतार्थ होने से, अविद्यमान, असत्य, अभूत, अर्थ को प्रगट करता है' – ऐसा कहा है। केवलज्ञान की पर्याय भी असत्यार्थ है; परंतु किस अर्थ में ? त्रिकाली सहज शुद्ध निजतत्त्व का आश्रय करने के लिये केवलज्ञान की पर्याय को गौण करके असत्यार्थ कहा है।

समयसार की ७वीं गाथा के भावार्थ में शिष्य ने प्रश्न किया है कि 'पर्याय भी द्रव्य का ही भेद है, अवस्तु तो नहीं है, फिर उसे व्यवहार कैसे कहा जा सकता है ?' – उसका समाधान करते हुए ऐसा अभिप्राय व्यक्त किया है कि – 'भेददृष्टि में निर्विकल्प दशा नहीं होती और सरागी को विकल्प बना रहता है; इसलिये जब तक रागादिक दूर न हों, तब तक भेद को गौण करके अभेदरूप निर्विकल्प अनुभव कराया गया है।'

आश्रय करनेवाली स्वयं निर्मल पर्याय है। त्रिकाली द्रव्य का आश्रय करके उस पर्याय में आत्मा ऐसा अनुभव करता है कि – 'त्रिकाली सामान्यद्रव्य, सो मैं हूँ; पर्याय – भेद, सो मैं नहीं हूँ' – ऐसा अनुभव करना, वह अनंत धर्मों को जानने का प्रयोजन है। [क्रमशः]

ज्ञान-गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से किये गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर।

प्रश्न – नयों को इंद्रजाल क्यों कहा है ?

उत्तर – नयों के अनेक प्रकार की अपेक्षाएँ आती हैं, उनके द्वारा वस्तु में विद्यमान कथंचित् परस्पर विरुद्ध धर्म बताये जाते हैं। जो स्याद्वाद से उसका सच्चा स्वरूप नहीं समझता उसे इंद्रजाल जैसी उलझन लगती है। जैसे – एक नय द्रव्य को नित्य कहता है, तब दूसरा नय उसे अनित्य कहता है; एक नय द्रव्य को एकरूप कहता है, दूसरा नय अनेकरूप कहता है; एक नय द्रव्य को सत्‌रूप कहता है, दूसरा नय असत्‌रूप कहता है; एक नय क्रिया से मुक्ति कहता है, तब दूसरा नय ज्ञान से मुक्ति कहता है; एक नय कर्म-नोकर्म को व्यवहार कहकर राग को निश्चय कहता है, और उसी राग को एक नय व्यवहार कहकर निर्मल पर्याय को निश्चय कहता है, तथा निर्मल पर्याय को व्यवहार कहकर त्रिकाली ध्रुवद्रव्य को निश्चय कहता है। इसप्रकार नय वस्तु के अनेक धर्मों को अनेक अपेक्षाओं से बतलाते हैं। इन्हें जो यथार्थ न समझे, उसे इंद्रजाल जैसी उलझन मालूम होती है। वास्तव में तो नय वस्तु के स्वरूप का अनेकांतपना बतलाकर सम्यक्-एकांत ऐसे त्रिकाली ध्रुव सामान्यद्रव्य का आश्रय कराते हैं और यही नयों को जानने का मूल प्रयोजन है।

प्रश्न – नय विवक्षा में बारहवें गुणस्थान तक अशुद्धनिश्चयनय होता है; वहाँ अशुद्धनिश्चय में शुद्धोपयोग कैसे घटता है ?

उत्तर – वस्तु का एकदेश की अपेक्षा कथन करना, वह नय का लक्षण है और शुभ, अशुभ तथा शुद्ध द्रव्य का अवलंबन, वह उपयोग का लक्षण है; इसलिये अशुद्धनिश्चयनय में भी

शुद्धात्मद्रव्य का अवलंबन होने से, शुद्ध ध्येय होने से, तथा शुद्ध साधक होने से शुद्धोपयोग परिणाम घटता है।

अशुद्धनय भले ही बारहवें गुणस्थान तक हो, परंतु साधक जीव के उपयोग का अवलंबन त्रिकाली शुद्ध ज्ञायकभाव है, उसका ध्येय शुद्ध है, अतः उसके भी पर्याय में शुद्धोपयोग होता है।

प्रश्न – आत्मा में अनंत गुण हैं; उस गुणभेद का लक्ष्य छोड़ने में निर्विकल्पता होती है, तो उन अनंत गुणों का ज्ञान चला नहीं जाता ?

उत्तर – आत्मा में अनंत गुण हैं, उनका ज्ञान करके, उनके भेद का लक्ष्य छोड़ने से ज्ञान चला नहीं जाता; भेद का विकल्प छूटकर दृष्टि अभेद होने से निर्विकल्पता में अनंत गुणों का स्वाद आता है – अनुभव होता है।

समयसार की ७वीं गाथा की टीका में कहा है – अनंत पर्यायों को एक द्रव्य पी गया है, वहाँ 'पर्याय' शब्द से सहवर्ती गुण कहे हैं। समयसार की २९४वीं गाथा की टीका में भी सहवर्ती गुणों को 'पर्याय' शब्द से कहा है। अनंत गुणों को द्रव्य पी गया है अर्थात् अनंत गुणमय अभेदरूप एक अखंड आत्मा है।

आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति अखंड अभेद एकरूप है। उसमें यह अशुद्ध पर्यायवाला आत्मा और यह शुद्ध पर्यायवाला आत्मा – इसप्रकार एकरूप आत्मा में दो भेद करना, वह कुबुद्धि है। एकरूप ज्ञायकभाव में यह बहिरात्मा और यह अंतरात्मा – ऐसे भेद करता है, वह पर्यायबुद्धि है। शुद्ध निश्चयनय का विषय त्रिकाल शुद्ध एकरूप आत्मा पर्यायरहित है, उसमें पर्याय-भेद करने का विकल्प करता है (दृष्टि करता है) वह मिथ्यादृष्टि है।

प्रश्न – पर्याय के भेद जानने में तो आते हैं न ?

उत्तर – पर्याय का यथायोग्य ज्ञान करना तो ठीक है, परंतु जो शुद्ध अखंड अभेद आत्मा को पर्याय के भेदरूप मानता है, उसे कुबुद्धि कहा है। (नियमसार कलश २६१)

प्रश्न – पर्याय को द्रव्य से कथंचित् अभिन्न कहा है न ?

उत्तर – संपूर्ण द्रव्य को प्रमाणज्ञान से देखने पर पर्याय कथंचित् भिन्न है और कथंचित् अभिन्न है – ऐसा कहा जाता है, परंतु शुद्धनय के विषयभूत त्रिकाली ध्रुव की अपेक्षा से देखने पर वास्तव में द्रव्य से पर्याय भिन्न ही है। पर्यायार्थिकनय से देखने पर पर्याय द्रव्य से अभिन्न है। प्रयोजन की सिद्धि के लिये तो पर्याय को गौण करके, अविद्यमान ही मानकर, त्रिकाली ध्रुवस्वभाव को मुख्य करके भूतार्थ का आश्रय कराया है।

प्रमत्त पर्याय परद्रव्य के निमित्त से मलिन होती है – ऐसा तो कहा ही है, परंतु अप्रमत्त पर्याय को भी परद्रव्य के संयोगजनित कह दिया है। औदयिकादि चार भावों को आवरणयुक्त कहा है। केवलज्ञान की क्षायिक पर्याय भी कर्मकृत (पंचास्तिकाय में) कही है, क्योंकि उसमें कर्म के अभाव की अपेक्षा आती है। चार भाव ज्ञायकस्वभाव में नहीं हैं, कर्म की अपेक्षा आने से उन्हें कर्मकृत कहा है।

भगवान के कहे हुए द्रव्य–गुण–पर्याय के स्वरूप का प्रतिपादन करने में समर्थ ऐसे द्रव्यलिंगी मुनि द्रव्य–गुण–पर्यायादि में तो चित्त को लगाते हैं, परंतु नित्यानंद प्रभु निज कारणपरमात्मा में चित्त को कभी नहीं जोड़ते, इसलिये वे अन्यवश हैं। वे ऐसे विकल्पों के वश होने से अन्यवश हैं। जो द्रव्य–गुण–पर्याय के विकल्प में चित्त को लगाता है, वह विष का प्याला पीता है, और जो नित्यानंद निज कारणपरमात्मा में चित्त को लगाता है, वह अनाकुल आनंद रस के प्याले पीता है।

प्रश्न – पर की पर्याय को परद्रव्य कहो परंतु स्व की निर्मल पर्याय को भी परद्रव्य क्यों कहते हो?

उत्तर – परद्रव्य के लक्ष्य के समान निर्मल पर्याय के लक्ष्य से भी राग होता है। अतः उसे भी परद्रव्य कहा है। वह द्रव्य से सर्वथा भिन्न है, ऐसा जोर दिये बिना दृष्टि का जोर द्रव्य पर नहीं जाता; इसलिये निर्मल पर्यय को भी परद्रव्य, परभाव तथा हेय कहा है। जिसे पर्याय का प्रेम है, उसका लक्ष्य परद्रव्य पर जाता है, इसलिये उसे प्रकारांतर से परद्रव्य का ही प्रेम है। परम सत्स्वभाव ऐसे द्रव्यसामान्य के ऊपर लक्ष्य जाना, वह अलौकिक बात है।

प्रश्न – जिसप्रकार क्रियानय से सिद्धि साध्य है, ऐसा एक धर्म है और ज्ञाननय से सिद्धि साध्य है, ऐसा भी एक धर्म है; उसीप्रकार त्रिकाली द्रव्य के आश्रय से भी सम्यग्दर्शन हो और निर्मल पर्यायसहित द्रव्य के आश्रय से भी सम्यग्दर्शन हो – ऐसा है क्या ?

उत्तर – नहीं, एक ही समय में जानने योग्य क्रियानय तथा ज्ञाननय इत्यादि अनंत धर्म हैं; परंतु सम्यग्दर्शन का विषय एक नय से त्रिकाली द्रव्य भी है और दूसरे नय से देखने पर पर्याययुक्त द्रव्य भी सम्यग्दर्शन का विषय बने, ऐसा कोई धर्म ही नहीं है। सम्यग्दर्शन का विषय तो मात्र भूतार्थ ऐसा त्रिकाली ध्रुव द्रव्य (पर्यायरहित) ही है; उसी के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है, अन्यथा सम्यग्दर्शन नहीं होता।

आवश्यक सूचना

श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड, जयपुर की शीतकालीन परीक्षाएँ दिनांक २, ३ व ४ फरवरी, १९७७ को होने जा रही हैं, जिनका विस्तृत कार्यक्रम कवर पृष्ठ ३ पर दिया गया है। संबंधित संस्थाओं (परीक्षा केन्द्रों) को रोल नंबर आदि आवश्यक परीक्षा-सामग्री भेजी जा रही है। जिन्हें २५ दिसम्बर १९७६ तक प्राप्त न हो वे तत्काल लिखें तथा यदि संभव हो तो परीक्षार्थी-छात्रों के नाम आदि दुबारा भेज दें, जिससे यदि उनके फार्म डाक की गड़बड़ी के कारण हमें प्राप्त न हुए हों तो तत्काल कार्यवाही की जा सके।

– मंत्री, परीक्षा बोर्ड

समाचार दर्शन

अंतर्प्रान्तीय तत्त्वप्रेमी सममेलन सानंद संपन्न

खुरई : दिनांक १३ व १४ नवम्बर, १९७६ को यहाँ तत्त्वप्रेमी बंधुओं का एक अंतर्प्रान्तीय सम्मेलन सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक प्रवक्ता श्री बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता फतेपुर की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। सम्मेलन में डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल जयपुर, श्री नेमीचंद्रजी पाटनी आगरा, ब्रह्मचारी पंडित मुन्नालालजी रांधेलीय सागर, पंडित प्रकाशचंदजी हितैषी दिल्ली, पण्डित रतनचंदजी शास्त्री विदिशा, पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा, पंडित धन्यकुमारजी बेलोकर शिरपुर, श्री सेठ रतनलालजी गंगवाल कलकत्ता आदि विद्वानों एवं श्रीमानों के अतिरिक्त लगभग ५० विभिन्न स्थानों के १२५ प्रतिनिधियों ने भाग लिया। श्रीमंत सेठ साहब कृषिपंडित ऋषभकुमारजी ने सबका जोरदार स्वागत एवं आतिथ्य किया।

गत अगस्त माह में नैनवाँ (जिला बूंदी-राज०) तथा गौहाटी (आसाम) में सोनगढ़ से प्रकाशित जैन शास्त्रों का घोर अविनय किया गया, उससे सभी क्षुब्ध, चिंतित एवं दु:खी थे। अनेक वक्ताओं ने विचार प्रकट करते हुए इन दुर्घटनाओं के प्रति शोक एवं रोष व्यक्त किया। अंत में गंभीर विचारोपरांत निम्नानुसार प्रस्ताव सर्व सम्मति से पास किये गये:-

प्रस्ताव क्रमांक १ - तत्त्वप्रेमी बंधुओं का यह अंतर्प्रान्तीय सम्मेलन ललितपुर (उ.प्र.) में गत जून माह में शास्त्री परिषद के अधिवेशन में पारित प्रस्तावों से प्रभावित होकर गौहाटी (आसाम) तथा नैनवाँ (जिला बूंदी - राज.) में सोनगढ़ से प्रकाशित पवित्र दिगम्बर जैन शास्त्रों का गत अगस्त माह ७६ में जो घोर अविनय किया गया, उसकी भर्त्सना करता है। माँ जिनवाणी के इस अवर्णवाद से त्रसित एवं दु:खित होकर अनेक आचार्यों, मुनिगणों, त्यागीगणों तथा समाज के विद्वानों, संस्थाओं और साधर्मी बंधुओं ने इस घृणित कार्य का विरोध किया है और इस संबंध में निंदा प्रस्ताव भी पारित किये हैं।

विशेषरूप से समाज के सर्वमान्य नेता साहू श्री शांतिप्रसादजी जैन आदि एवं श्रीमंत सेठ ऋषभकुमारजी खुरई आदि ने समाज के नाम जो मार्मिक अपीलें जारी की हैं, उनसे समाज में फैली भ्रांति दूर होकर सर्वत्र शांतिपूर्ण वातावरण के बनाने में बहुत मदद मिली है। यह

सम्मेलन इन सभी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता है।

प्रस्तावक – श्रीमान् सेठ भगवानदासजी, सागर समर्थक : डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल, जयपुर

प्रस्ताव क्रमांक २ :– तत्त्वप्रेमी बंधुओं का यह अंतर्प्रान्तीय सम्मेलन सर्वसम्मति से यह निर्णय करता है कि माँ जिनवाणी की अविनय से वर्तमान विक्षुब्ध वातावरण में समस्त तत्त्वप्रेमी बंधुओं ने पूर्ण शांति रखी है, फलस्वरूप देश का वातावरण स्वच्छ और शांत हो गया है। तत्त्वाभ्यास एवं तत्त्वप्रचार शांति का मार्ग है। अत: प्रत्येक आत्मार्थी का कर्तव्य है कि वह विघटन की प्रवृत्तियों से दूर रहकर सामाजिक एकता को कायम रखते हुए अपना तत्त्वाभ्यास, सामूहिक स्वाध्याय एवं पाठशालाओं का संचालन शांति से निश्चिंत होकर नियमितरूप से चालू रखे। आलोचना–प्रत्यालोचना से दूर रहे। भाषा को संयमित रखें।

प्रस्तावक : कृषिपंडित सेठ ऋषभकुमारजी जैन, खुरई
समर्थक : श्री नेमीचंदजी पाटनी, आगरा
अनुमोदक : श्री पंडित प्रकाशचंदजी हितैषी, देहली

प्रस्ताव क्रमांक ३ : तत्त्वप्रेमी बंधुओं का यह सम्मेलन प्रस्ताव करता है कि युवा वर्ग में नैतिक सदाचार, धार्मिक संस्कार एवं सामान्य तत्त्वज्ञान के प्रचार व प्रसार के लिये युवा मंडलों का गठन किया जावे।

प्रस्तावक : श्री हरकचंदजी बिलाला, अशोकनगर
समर्थक : श्री नेमीचंदजी गोंदवाले, शिवपुरी

श्री वीतराग–विज्ञान पाठशालाओं की स्थापना

भोपाल : श्री दिगंबर जैन मंदिर, टी.टी. नगर, भोपाल में श्री सुमतिकुमारजी जैन की प्रेरणा से नवीन वीतराग–विज्ञान पाठशाला की स्थापना हुई जिसमें श्री योगेन्द्रकुमारजी अध्यापक नियुक्त किये गये। आपने ललितपुर शिविर में प्रशिक्षण प्राप्त कर लिया है।

आलंद : (जिला गुलबर्गा–मैसूर प्रान्त) में एक नवीन वीतराग–विज्ञान पाठशाला स्थापित हुई है तथा एक पाठशाला पिछले दो वर्षों से चल रही है। दोनों पाठशालाओं में वी.वि. परीक्षा बोर्ड का पाठ्यक्रम पढ़ाया जाता है।

उनियारा : (टोंक, राजस्थान) में प्रशिक्षित अध्यापक कजोड़मलजी के प्रयत्न से वीतराग-विज्ञान पाठशाला प्रारंभ की गयी जिसमें ९५ छात्र अध्ययन कर रहे हैं। छात्रों को इन पुस्तकों के पढ़ने से बड़ी रुचि जगी है। अध्यापक ललितपुर शिविर में प्रशिक्षण प्राप्त हैं।

विदिशा : श्री पंडित लालजीराम की प्रेरणा से छोटा मंदिर (अंदर किला) में दिनांक २३-१०-७६ को वीतराग-विज्ञान पाठशाला का विधिवत् उद्घाटन श्री सेठ भंवरलालजी छाबड़ा के द्वारा संपन्न हुआ।

चिरगांव : (झांसी, उ.प्र.) में श्री बृजकिशोरजी जैन के मंत्रित्व में वीतराग-विज्ञान पाठशाला प्रारंभ हुई जिसमें ललितपुर शिविर में प्रशिक्षण प्राप्त अध्यापक श्री वीरेन्द्रकुमारजी बड़ी लगन और रुचि के साथ पढ़ा रहे हैं।

वर्धा : (महाराष्ट्र) में श्री सुदर्शनकुमारजी शाह, मंत्री, श्री महावीर दि० जैन मंदिर, रामनगर, वर्धावालों की प्रेरणा से श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी के मंदिर में वीतरागविज्ञान पाठशाला प्रारंभ हुई। रामनगर के जैन मंदिर में तीन वर्षों से इनके मंत्रित्व एवं मार्गदर्शन में एक पाठशाला पहिले से ही चल रही है।

सहारनपुर : में श्री पार्श्वनाथ जिनालय में तथा श्री दिगम्बर जैन मंदिर मुहल्ला शौरमियान में वीतराग-विज्ञान पाठशालाएँ प्रारंभ हो चुकी हैं तथा प्रवेशफार्म भरकर आ चुके हैं। स्थानीय दिगम्बर जैन कन्या इंटर कालेज में श्री वीतराग-विज्ञान बोर्ड का पाठ्यक्रम गत चार वर्षों से चालू है ही।

श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड का पाठ्यक्रम आरंभ

नागपुर : जैन महिला एकता संघ की ओर से संचालित पाठशाला में श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड जयपुर का पाठ्यक्रम प्रारंभ किया गया। शीतकालीन परीक्षा में ४६ विद्यार्थियों ने फार्म भरे।

सावर : (अजमेर, राजस्थान) में श्री नेमीनाथ दिगम्बर जैन विद्यालय में इस वर्ष से श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड जयपुर का पाठ्यक्रम प्रारंभ किया गया। अध्यापन कार्य पंडित माणिकचंदजी जैन कर रहे हैं।

अभूतपूर्व धर्म प्रभावना

विदिशा : श्री दिगम्बर जैन मंदिर स्टेशन पर दिनांक १५ से १९ नवम्बर तक संपन्न वेदी-प्रतिष्ठा महोत्सव के अवसर पर पधारे आध्यात्मिक प्रवक्ता पंडित बाबूभाई मेहता, सिद्धांताचार्य पंडित फूलचंदजी, दार्शनिक विद्वान डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल जैसे दिग्गज विद्वानों के प्रभावशाली प्रवचनों से अभूतपूर्व धर्म प्रभावना हुई। प्रतिष्ठा-विधि पूज्य ब्रह्मचारी परसरामजी द्वारा शुद्धाम्नाय से संपन्न हुई। ब्रह्मचारी अभिनंदनकुमारजी, ब्रह्मचारी अभयकुमारजी एवं श्रीमल राजमल एण्ड पार्टी द्वारा भक्ति के भी सरस कार्यक्रम हुए।

आदरणीय बाबूभाई द्वारा सामान्य परिचय देने मात्र से विदिशा समाज द्वारा श्री कुन्दकुन्द-कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट को कल्पनातीत योगदान प्राप्त हुआ। **- रतनचंद शास्त्री**

मौ : ब्रह्मचारी श्री हेमराजजी शास्त्री के तत्त्वावधान में दिनांक २५-१०-७६ से ६-११-७६ तक वीतराग-विज्ञान शिक्षण-शिविर का आयोजन सानंद संपन्न हुआ। इस अवसर पर श्री ब्रह्मचारी नित्यानंदजी शास्त्री द्रोणगिरि, पंडित धन्नालालजी ग्वालियर आदि के आध्यात्मिक प्रवचनों एवं कक्षाओं से सब ने विशेष लाभ लिया। **- शांतिकुमार जैन**

तारंगाजी : कार्तिकी अष्टाह्निका में श्री डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल के तत्त्वावधान में श्री सिद्धचक्र मंडल विधान का आयोजन सानंद संपन्न हुआ। लगभग १५०० व्यक्तियों ने धर्मलाभ लिया। प्रतिदिन चार बार श्री बाबूभाई मेहता एवं डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल के मार्मिक प्रवचन होते थे। रथयात्रा का भव्य आयोजन किया गया। तारंगाजी क्षेत्र को लगभग पन्द्रह हजार रुपये की आय हुई।

—अमृतलाल संघवी

मंत्री, दिगम्बर जैन भ० महावीर २५००वाँ नि०म० समिति, गुजरात

श्री जिन चैत्यालय का शिलान्यास संपन्न

कुरावड़ : स्थानीय मुमुक्षु मंडल द्वारा निर्माणाधीन श्री १००८ सीमंधर जिन चैत्यालय का शिलान्यास बहुत ही उत्साहपूर्वक श्रीमान् सेठ भगवानलाल छगनलालजी नरोडा निवासी के कर-कमलों द्वारा सानंद संपन्न हुआ। दिनांक १३-११-७६ को बड़े धूमधाम से रथोत्सव चल-समारोह हुआ। **- उग्रसेन बण्डी**

उज्जैन : दिनांक २५-११-७६ को प्रातः लक्ष्मीनगर कालोनी, उज्जैन में एक नूतन जिनमंदिर का शिलांयास श्री डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल जयपुर द्वारा सानंद संपन्न हुआ। शिलान्यास के तत्काल बाद एक घंटा वहीं पर तथा रात्रि में क्षीरसागर दिगंबर जैन मंदिर में जिनेन्द्र भक्ति एवं वीतराग-विज्ञान पाठशाला के छात्रों द्वारा संपन्न आध्यात्मिक संवादों के रूप में रोचक कार्यक्रम के पश्चात् डॉ. भारिल्ल के मार्मिक प्रवचन हुए। इस अवसर पर श्री डॉ. हरीन्द्रभूषणजी विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन, पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा, पंडित रतनचंदजी शास्त्री एम.ए. विदिशा आदि विद्वान एवं अनेक श्रीमान् उपस्थित थे। **- विमलचंद झांझरी**

निरीक्षक नियुक्त

श्री पंडित गोविंदप्रसाद जैन खडेरी (म.प्र.) को श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड, जयपुर से संबंधित पाठशालाओं के निरीक्षणार्थ निरीक्षक नियुक्त किया गया है। वे अभी बुंदेलखंड में भ्रमण कर रहे हैं। उन्हें पाठशालाओं के निरीक्षण में पूर्ण सहयोग प्रदान करें एवं उनके प्रवचनों का लाभ उठावें। **- डॉ. हुकमचंद भारिल्ल**

श्री कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट की मीटिंग

दिनांक १४-११-७६ को खुरई में अंतर्प्रान्तीय तत्त्वप्रेमी सम्मेलन के अवसर पर श्री कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट के ट्रस्टियों की मीटिंग सानंद संपन्न हुई, जिसमें संबंधित अनेक विषयों पर गंभीर विचार-विमर्श हुआ।

ट्रस्टियों की ही आगामी मीटिंग दिनांक ११-१२-७६ को बंबई में होने जा रही है, जिसमें आगामी कार्यक्रमों के संबंध में महत्त्वपूर्ण निर्णय लिए जावेंगे।

- माणेकलाल आर. गाँधी, मंत्री

पाठकों के पत्र

इस शीर्षक के अंतर्गत पाठकों के आवश्यक पत्रों के महत्त्वपूर्ण अंशों को संक्षेप में प्रकाशित किया जावेगा।

इंदौर से श्री सनतकुमारजी जैन लिखते हैं –

'एक और इंटरव्यू कानजीस्वामी से' पढ़ा। प्रश्न तो गहराई से पूछे गये थे, परन्तु उनके उत्तर उनसे भी गहरे थे। पूज्य गुरुदेव के अन्तर के भाव कितने सहज एवं सरल हैं। ऐसी मधुर और नम्र आत्मा के सहवास से जड़ शब्द भी वैसे ही मधुर और नम्र बन गये। यह आत्मा का ही चमत्कार है। धन्य हैं ऐसे महापुरुष जिनका हृदय ऐसा विशाल, करुणा से ओतप्रोत, दृष्टि से समपना और भावों में माध्यस्थता है। पूज्यनीया चंपाबेन के विचार–बिंदु अति हृदयग्राही हैं।

पाटन (गुजरात) से श्री रमणलालजी शाह, रिटायर्ड एज्यूकेशन इन्सपेक्टर लिखते हैं–

आत्मधर्म के नवम्बर अंक में सम्यग्ज्ञान दीपिका के संबंध में पूज्य स्वामीजी से लिया गया इंटरव्यू देकर आपने समाज की बहुत बड़ी सेवा की है, इस समय इसकी बहुत आवश्यकता थी। इस इंटरव्यू से सम्यग्ज्ञान दीपिका के संबंध में फैलाया गया भ्रम बहुत कुछ दूर हो गया है। इसके लिए आपको अनेकशः धन्यवाद।

कलकत्ता से श्री रतनलालजी गंगवाल लिखते हैं

सम्यग्ज्ञान दीपिका के संबंध में गुरुदेव का इंटरव्यू देकर आपने समय पर एकदम सही काम किया है। इस समय इसकी बहुत आवश्यकता थी। इससे सम्यग्ज्ञान दीपिका और सोनगढ़ के संबंध में जानबूझ कर फैलाई गई अनेक भ्रांतियाँ दूर हुई हैं। ऐसी चीज़ें हमेशा देते रहिए।

गुरुदेव के प्रवचन भी बहुत अच्छे आ रहे हैं। इसके पहिले अंकों में दिये गये उत्तम क्षमा संबंधी लेख भी मार्मिक थे।

गंज बासौदा से श्री केसरीमलजी लिखते हैं –

आपके संपादकत्व में आते ही रूप-रंग, साज-सज्जा बदलकर आत्मधर्म समाज का सर्वश्रेष्ठ पत्र बन रहा है। पूज्य स्वामीजी का इंटरव्यू 'सम्यग्ज्ञानदीपिका' समयोचित है। इससे समाज में कतिपय लोगों द्वारा फैलाया भ्रम दूर होगा।

रतलाम से श्री मोहनलालजी छाबड़ा लिखते हैं –

आत्मधर्म का पाँचवाँ अंक प्राप्त हुआ। प्रथम अंक में चैतन्य चमत्कार इंटरव्यू व पाँचवें अंक में सम्यग्ज्ञान दीपिका के संबंध में पूज्य गुरुदेव का इंटरव्यू पढ़ा। इन्हें पढ़कर कितने ही लोगों की भ्रांतियाँ दूर हो गई हैं। शास्त्रों का अर्थ सही ढंग से समझा जाये तो वे शास्त्र हैं अन्यथा वे ही शस्त्र हो जाते हैं।

जबलपुर से प्रसिद्ध कवियित्री एवं लोकप्रिय लेखिका श्रीमती रूपवतीजी 'किरण' लिखती हैं–

आपके द्वारा संपादित आत्मधर्म के चार अंक क्रमशः पढ़ चुकी हूँ, हार्दिक प्रसन्नता हुई। आपका संपादन कार्य अभिनंदनीय है। आशा नहीं, पूर्ण विश्वास है कि पत्रिका के द्वारा सर्वसाधारण में फैली हुई भ्रांतियों का निराकरण होता रहेगा एवं समाज का हित होगा।

छिंदवाड़ा से श्री अजितकुमारजी लिखते हैं –

इस माह का आत्मधर्म पढ़ा। अगला अंक पढ़ने के लिये जिज्ञासा इतनी तीव्र हो रही है कि व्यक्त करने में असमर्थ हूँ। नवंबर आत्मधर्म का मुख्याकर्षण आपका द्वितीय इंटरव्यू था। यदि इसी तरह प्रतिमास नये-नये रोचक विषय प्रकाशित होते रहें तो मैं समझता हूँ जो विरोध पनप रहा है उसका निकट भविष्य में समूल नाश हो जायेगा।

अमरावती से श्री उदयचंदजी जैन लिखते हैं –

आत्मधर्म के सभी अंकों में आत्मज्ञान की सामग्री भरपूर एवं सुंदर है। जुलाई एवं नवम्बर माह के अंकों में इंटरव्यू ने तो आत्मधर्म में चार चांद लगा दिये। इसी तरह एक-एक, दो-दो अंकों के बाद इंटरव्यू छपता रहे तो समाज गलत प्रचार करनेवालों से एवं भ्रम फैलानेवालों से सावधान हो जावेगी।

प्रबंध संपादक की कमल से

(१) हमारे पास पते बदलने के लिये अनेक भाईयों के पत्र आते हैं। हमने सभी ग्राहकों के पते छपवा लिये हैं, जिससे बार-बार पते बदलने में परेशानी होती है। अतः पता बदलवाने के लिये कम से कम लिखें।

(२) पत्र व्यवहार करते समय अधिकांश भाई अपना ग्राहक नंबर नहीं लिखते हैं, जिससे कार्यवाही करने में असुविधा होती है। और जब कार्यवाही नहीं होती है तब बार-बार पत्र आते हैं। अतः पत्र व्यवहार करते समय आप अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें।

(३) आत्मधर्म डिस्पैच हो जाने के उपरांत रास्ते में रैपर आदि फट जाने से कुछ लोगों को अंक नहीं पहुँच पाते। पता फट जाने से हमें यह पता नहीं लग पाता कि यह अंक किसे प्राप्त नहीं हो सका, अतः जिन भाईयों को अंक प्राप्त न हो वे १५ तारीख के उपरांत पत्र लिखकर मंगा लें।

पाठकों के पत्र

लौरिया (चंपारन) श्री अरिहंतपालजी लिखते हैं -

आपने पूज्य स्वामीजी का इंटरव्यू बहुत ही अच्छे ढंग से निकाला। बहुत शंकाएँ जो भ्रम में डाल रही थीं, निवारण हो गईं। आत्मधर्म के अंक बहुत ही रोचक, आकर्षक तथा आत्मप्रेरक हैं।

श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड

श्री टोडरमल स्मारक भवन

ए-४, बापूनगर, जयपुर : ३०२००४ (राजस्थान)

शीतकालीन परीक्षा-कार्यक्रम सन् १९७७

दिन व दिनांक	नाम ग्रंथ
बुधवार २ फरवरी, १९७७	१. बालबोध पाठमाला भाग १ (बा० प्रथम खंड) मौखिक २. जैन बालपोथी भाग १ (मौखिक) ३. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग १ (प्र० प्रथम खंड) ४. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १ ५. छहढाला (पूर्ण) ६. तत्त्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) पूर्वार्द्ध ७. मोक्षमार्ग प्रकाशक (पूर्वार्द्ध) ८. जैन सिद्धान्त प्रवेशिका (बरैयाजी) ९. विशारद द्वितीय खंड (प्रथम वर्ष)
गुरुवार ३ फरवरी, १९७७	१. बालबोध पाठमाला भाग २ (बा० द्वितीय खंड) मौखिक २. जैन बालपोथी भाग २ (मौखिक) ३. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग २ (प्र. द्वितीय खंड) ४. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २ ५. द्रव्यसंग्रह (पूर्ण) ६. तत्त्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) उत्तरार्द्ध ७. लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका (सोनगढ़) ८. मोक्षमार्गप्रकाशक (उत्तरार्द्ध) ९. विशारद प्रथम खंड (प्रथम वर्ष) १०. विशारद द्वितीय खंड (द्वितीय वर्ष)
शुक्रवार ४ फरवरी, १९७७	१. बालबोध पाठमाला भाग ३ (बा० तृतीय खंड) मौखिक २. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग ३ (प्र० तृतीय खंड) ३. रत्नकरंड श्रावकाचार (पूर्ण) ४. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय (पूर्ण) ५. विशारद प्रथम खंड (द्वितीय वर्ष)

Reg. No. RJ-2712

हमारे यहाँ प्राप्त प्रकाशन*

	रु० पैसे		रु० पैसे
समयसार	१२-००	पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व	१०-००
प्रवचनसार	१२-००	तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ	५-००
पंचास्तिकाय	७-५०	" " (पॉकेट बुक साइज में हिन्दी में)	२-००
नियमसार	५-५०	मैं कौन हूँ?	१-००
अष्टपाहुड़	१०-००	पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य	०-६५
समयसार नाटक	७-५०	कविवर बनारसीदास : जीवन और साहित्य	०-३०
समयसार प्रवचन भाग १	४-५०	वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	३-००
समयसार प्रवचन भाग २	४-५०	अनेकांत और स्याद्वाद	०-३५
समयसार प्रवचन भाग ३	५-००	तीर्थंकर भगवान महावीर	०-४०
समयसार प्रवचन भाग ४	७-००	वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर	०-२५
आत्मावलोकन	३-००	सत्य की खोज (कथानक)	प्रेस में
श्रावकधर्म प्रकाश	३-००	अपने को पहचानिए	०-५०
छहढाला (सचित्र)	१-५०	पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक और उसकी ग्यारह प्रतिमाएँ	०-३५
द्रव्यसंग्रह	१-२०	अर्चना (पूजा संग्रह)	०-४०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-४०	मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ (कैलेंडर)	०-५०
प्रवचन परमागम	२-५०	बालबोध पाठमाला भाग १	०-५०
धर्म की क्रिया	२-००	बालबोध पाठमाला भाग २	०-७०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग १	१-५०	बालबोध पाठमाला भाग ३	०-७०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग २	१-५०	वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग १	०-७०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग ३	१-५०	वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग २	१-००
तत्त्वज्ञान तरंगिणी	५-००	वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग ३	१-००
अलिंग-ग्रहण प्रवचन	१-६०	तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १	१-२५
बालपोथी भाग १	०-२५	तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २	१-२५
बालपोथी भाग २	०-४०	सुंदर लेख बालबोध पाठमाला भाग १	०-२५
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	३-००	आगम पथ : कानजीस्वामी विशेषांक	३-००
जयपुर (खानियाँ) तत्त्वचर्चा भाग १ व २	३०-००	परमात्म पूजा संग्रह	२-००
परमात्म पूजा संग्रह	२-००		
मोक्षमार्गप्रकाशक	५-००		

*** श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)**

*** पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४**